स्वतन्त्रता के पश्चात् तन्त्र वाद्यों की उन्नति एवं अवनति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल (संगीत)
उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डा० साहित्य कुमार नाहर
अध्यक्ष, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्री
सीमा श्रीवास्तव

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
1999

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि "स्वतंत्रता के पश्चात् तंत्र वाद्यों की उन्नति एवं अवनति का विश्लेषणात्मक अध्ययन" विषयक शोध प्रबन्ध सीमा श्रीवास्तव ने/इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के डी. फिल. (संगीत) उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में स्वयं लिखा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सामग्री पूर्णतः मौलिक है।

अस्तु मैं संस्तुत करता हूँ कि इसे डी. फिल (संगीत) उपाधि हेतु परीक्षार्थ भेजा जाये।

शोध निर्देशक

दिनांक 24.9.99

(डॉ० साहित्य कुमार नाहर)
अध्यक्ष
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

HEAD
Deptt. of Music and Performing Arts
University of Allahabad

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

तंत्र वाद्यों के छाया चित्रों का विवरण

आमुख

भारतीय संगीत एक प्राचीन कला है वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय संगीत अनेक परिवर्तनों के साथ पुष्पित पल्लवित होता रहा है। संगीत एक सजीव एवं अमूर्त कला है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति से संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काल में तो संगीत का प्रयोग वेद, मंत्रों, एवं ऋचाओं में ही किया जाता था। आज संगीत का विस्तार क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि आज संगीत घर-घर में पहुंच गया है। संगीत को विद्यालयों में अपनाया गया है। संगीत का सम्बन्ध देवी-देवताओं से रहा है। साथ ही साथ संगीत का सम्बन्ध पशु-पक्षियों से भी रहा है । भारतीय संगीत में ऐक ऐसी शक्ति है कि व्यक्ति परमानंद तक पहुंच सकता है। भारतीय संगीत के क्षेत्र में संगीत की तीनों कलाओं गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं का विकास उत्तरोत्तर होता रहा है। संगीत में वाद्यों का प्रयोग वैदिक युग से होता आ रहा है। वैदिक काल, पौराणिक काल, रामायण काल या महाभारत काल प्रायः हर युग में वाद्यों के

प्रयोग का उल्लेख हमें शास्त्रों में मिलता है।

भारतीय संगीत में वाद्यों का प्रमुख स्थान रहा है। वाद्यों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। तंत्र, अवनद्ध, सुषिर और घनवाद्य। जिनमें प्रारम्भ से ही तँत्र वाद्य और इनके विभिन्न प्रकारों की संगीत के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका रही है। आधुनिक युग के सर्वाधिक प्रचलित तंत्र वाद्य सितार की विद्यार्थी होने के नाते इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में एम0 ए0 कक्षा में अध्ययन के दौरान ही मन में यह भावना धीरे-धीरे पुष्पित पल्लवित होने लगी कि तंत्र वाद्य एवं विशेषकर सितार वाद्य की जो वर्तमान परिवेश में स्थिति और लोकप्रियता है यह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से किस प्रकार विकसित हुयी आज जो सितार की स्थिति है उसमें यदि हम दृष्टिपात करे तो हम पाते है कि उसकी बनावट वादन शैली, बाज, वादन सामग्री और प्रस्तुतीकरण के क्षेत्रों में विगत तीन चार दशकों में जो उत्तरोत्तर विकास हुआ है, संभवतः यह स्थिति पहले नही थी। सितार वाद्य की बनावट में ही हमें दो प्रकार के वाद्य दिखाई पड़ते है पहला सादा सितार और दूसरा तरबदार सितार। इसी प्रकार वाद्यों में प्रयोग होने वाले परदे, तार, सजावट की चीजे, प्रयुक्त तारों की विशेष स्थिति वादन शैलियों के समय-समय पर होने वाले परिवर्तन इत्यादि कुछ ऐसे पहलू है जिन पर कि गहनता से विचार करने की आवश्यकता महसूस हुयी। इतना ही नही उत्तरोत्तर बढ़ते तकनीकी परिवेश

तथा इलेक्ट्रानिक यंत्रों के आगमन के बाद भी सितार वाद्य पर इसका प्रभाव न पड़ता। सितार एवं अन्य तंत्र वाद्यों के सन्दर्भ में किस सीमा तक लाभदायक या हानिकारक है यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय मन में बार-बार उठ रहा था।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से जिस समय कि हमारा देश परतंत्र था और 1947 में देश के आजादी प्राप्त करने के बाद के दशकों में विभिन्न तंत्र वाद्यों विशेषकर सितार, सरोद इत्यादि के सन्दर्भ में, इनके विभिन्न अवयवों में जो उत्तरोत्तर विकास अथवा ह्रास की मुख्य घटनाएं हुयी है उनको विशद अध्ययन के पश्चात् सामने लाने का प्रयास यह शोध प्रबन्ध है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विभिन्न तंत्र वाद्यों का सन्दर्भ लेते हुए विशेष रूप से सितार, सरोद के सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उन्नति अवनति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध शीर्षक एवं शोध कार्य की प्रेरणा एवं निर्देशन संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वर्तमान अध्यक्ष एवं सितार सम्बन्धी समस्त ज्ञान के गुरू डॉ0साहित्य कुमार नाहर हैं ।

आभार

माँ सरस्वती के चरणों में समर्पित

संगीत एक प्राचीन कला है। प्राचीन काल में तो संगीत का उपयोग एक सीमित दायरे में ही होता था। लेकिन वर्तमान समय में इसका स्वरूप दिन पर दिन उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। वर्तमान युग में संगीत से शायद ही कोई व्यक्ति अछूता रह गया हो।

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से जब संगीत (सितार) विषय में एम.ए. कर रही थी उसी समय मेरे मन में इस विषय में आगे गहन अध्ययन करने की इच्छा जाग्रत हुयी। अतः मैंने एम.ए. करने के बाद संगीत में शोध करने का निर्णय लिया। इस कार्य को प्रारम्भ से लेकर आज तक सफलतापूर्वक पूर्ण करने में मेरे पूज्य गुरू एवं अध्यक्ष संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय डॉ० साहित्य कुमार नाहर जी का विशेष आशीर्वाद एवं योगदान रहा है। जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे शोध कार्य को पूर्ण कराया इनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। इसके साथ ही साथ संगीत विभाग के समस्त प्राध्यापक एवं प्राध्यापिका तथा

विशेष रूप से डॉ० रश्मि दीक्षित लाइब्रेरी इंचार्ज का योगदान भी मुझे मिला। इनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। इसके अतिरिक्त इस शोध कार्य को पूर्ण करने में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, विभागीय पुस्तकालय, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय, इलाहाबाद तथा पब्लिक पुस्तकालय इलाहाबाद का मुझे पूर्ण सहयोग मिला। इन सबके प्रति हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

इस शोध कार्य के पूर्ण होने में मेरी मां, सास-ससुर, मेरे पति श्री विष्णु प्रकाश श्रीवास्तव तथा मेरे भाई-बहनों का भी पूर्ण सहयोग मुझे प्राप्त होता रहा।

मैं इस शोध प्रबन्ध के टाइपिस्ट श्री प्रमोद कुमार अग्रवाल जी का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे शोध प्रबन्ध को उत्कृष्ट ढंग से टंकित किया है।

अन्त में उन सभी के प्रति जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने में कृपापूर्वक सहयोग प्रदान किया है, मैं हृदय से आभार व्यक्त करते हुए, शोध कार्य का यह अकिंचन प्रयत्न शोध प्रबन्ध गुणीजनों की सेवा में प्रस्तुत करती हूँ।

Seema Srivastava

24.9.99

अध्याय - 1

भारतीय संगीत एवं तंत्रवाद्य

संगीत

भारतवर्ष में विभिन्न कलाएं आदि काल से ही प्रचलित रही है, और उन्ही कलाओं में एक सर्वप्रमुख ललित कला है "संगीत"। संगीत के अतिरिक्त भी देश में कुछ उपयोगी ललित कलाएं प्रचलित रही हैं, जिनमें प्रमुख रूप से चित्रकला, मूर्तिकला, और वास्तुकला रही हैं। सभी ललित कलाओं में समान तत्व निहित है और वह है, सौन्दर्य बोध। इन सभी ललित कलाओं में तात्विक अन्तः साम्य भी है। काव्यकला और चित्रकला इन दोनों की विषय वस्तु में प्रायः कई दृष्टियों से समानता रहती है। ब्लेक ने इन दोनों कलाओं के मूल में "कल्पना" या

"डिवाइन विजन" ‡ Divine Vision ‡ को प्रधान स्थान दिया है। अतः इनकी स्पष्ट धारणा है कि काव्य और चित्र तथा संगीत भी कल्पनात्मक कलाएं है।[1] इन कलाओं के अन्तः सम्बन्ध के कारण इससे सम्बद्ध कलाकारों यथा कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, स्थापत्यकार , प्रभृति को एक ही कोटि का मनुष्य माना है।

काव्य और चित्रकला की तरह चित्रकला और संगीत कला में भी प्रभूत तात्विक सम्बन्ध है। संगीतकला जिन दृश्य - अदृश्य सूक्ष्मताओं का निबन्धन ध्वनि या लय के सहारे करती है, उन्हें चित्रकला रंग रेखाओं के द्वारा व्यक्त करती हैं। सभी राग-रागनियों के वैशिष्ट्यबोध चित्र रंग-रेखाओं में बंधे मिलते हैं। ये रागमाला चित्र संगीतकला और चित्रकला की पारस्परिकता के द्योतक है।

चित्रकला और मूर्तिकला ये दोनों कलाएं दृश्य हैं, चित्रकला और मूर्तिकला का तात्विक अन्तः सम्बन्ध उतना ही स्पष्ट है जितना कि काव्य और संगीत का।

---

1 सौन्दर्य शास्त्र के तत्व ‡डॉ० कुमार-विमल‡, पृ. 65.

संगीत-कला और स्थापत्य कला का तात्त्विक अन्तः सम्बन्ध अक्षुण्ण है। संगीत श्रव्य कला है, और सूक्ष्मतम कला भी तथा स्थापत्य दृश्यकला है, और सर्वाधिक स्थूल कला है। इसीलिए श्लेगेल ने स्थापत्यकला को "फ्रोजेन म्यूजिक" कहा है।

काव्य और संगीत कला ये दोनों ही श्रव्य कलाएं है। संगीतकला में काव्यात्मकता और चित्रात्मकता का समावेश होता रहा था।

शैली, शिल्प, अभिव्यक्ति भंगिमा और प्रेषणीयता के माध्यम की दृष्टि से ललितकलाओं में चाहे जितनी भिन्नता हो परन्तु तत्व समास की दृष्टि से सभी ललित कलाओं में एक प्रच्छन्न अन्तः सम्बन्ध है। इन ललित कलाओं में तात्त्विक अन्तः सम्बन्ध का मूलाधार स्वर-बोध और वर्ण-बोध का पारस्परिक सम्बन्ध है। चित्रकला, संगीतकला और काव्य में तात्त्विक समागम की क्षमता

---

1 सौन्दर्य शास्त्र के तत्व (डॉ0 कुमार-विमल), पृ. 70.

उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । स्थापत्य और मूर्तिकला अपनी स्थूलता के कारण तात्विक समागम के उस उच्च धरातल पर पहुँचने में पश्चात् पद रह जाती है । ये कलाएं सुन्दर कलात्मक भवनों, मनुष्यों और देवताओं की मूर्तियों, सोने तथा अन्य धातुओं की मूर्तियों के रूप में दिखाई देती हैं । कुछ मूर्तियों से संगीत का आभाष होता है, जैसे - शिवजी की ताण्डव नृत्य करती हुई मूर्ति इसके अतिरिक्त नृत्य करती हुई मूर्ति इसके अतिरिक्त नृत्य करती हुई नृत्यांगनाओं की मूर्तियां । इन कलात्मक मूर्तियों को देखने से ही प्राचीन समय के संगीत होने का आभास मिलता है ।

इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ समय से ही उद्भावित होकर संगीत प्राचीन काल की ही अनुपम देन है । संगीत कला का आनन्द चित्रकला, मूर्तिकला, एवं वास्तुकला की तुलना में कहीं अधिक प्राप्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त लोकप्रियता की दृष्टि से भी संगीतकला का इन कलाओं से अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है ।

संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों में अनेक प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं । जिनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है -

एक फारसी कथा के अनुसार प्राचीन काल
में एक बार हजरत मूसा नाव पर सैर
कर रहे थे उसी समय उन्हें एक पत्थर
दिखाई दिया । सहसा वहाँ ब्राइल नामक
एक फरिश्ता आया और उसने पैगम्बर से
उस पत्थर को सदैव अपने पास रखने को
कहाँ । कुछ समय बाद हजरत मूसा एक
दिन जंगल में सैर कर रहे थे कि उन्हें
प्यास लगी किन्तु उन्हें पानी न मिला
उनकी प्यास बढ़ती ही गयी । उन्होंने
खुदा से बन्दगी की । परिणामतः कुछ
ही समय में वर्षा प्रारम्भ हो गयी ।
वर्षा की धार हजरत मूसा के पास
मौजूद पत्थर पर गिरने लगी । फलतः
उस पत्थर के सात टुकड़े हो गये । इन
सात टुकड़ों के द्वारा पानी की सात
धाराएं बहने लगी । उन धाराओं से
सात ध्वनियां निकली जिन्हें हजरत मूसा
ने आत्मसात कर लिया । ये ही सात
ध्वनियां संगीत के मुख्य सात स्वर समझी

> "संगीत वह सक्षम कला है जिसका आधार नाद है तथा इसकी उत्पत्ति भी स्वयं नाद से हुयी है। संगीत का अर्थ ही है जो लय में उचित ढंग से गाया बजाया जाए वही संगीत है।"

नाद के बिना संगीत का कोई अस्तित्व नही है उसकी कल्पना मात्र भी व्यर्थ है -

> " न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरः ।
> न नादेन बिना नृत्तं तस्मानादात्यं जगत् ।। "[1]

संगीत के अन्तर्गत वस्तुतः गायन वादन तथा नृत्य इन तीनों के योग को संगीत कहा गया है। मानव की अन्तरात्मा का सीधा सम्बन्ध नादब्रम्ह से रहा है। जिस प्रकार से भारतीय ज्ञान का स्रोत वेद रहा है उसी प्रकार संगीत का सम्बन्ध भी वेदों से है। नाद से

---

1 संगीत में ताल वाद्यों की महत्ता ﴾डॉ0 चित्रा गुप्ता﴿, पृ. 1.

जाने लगीं ।[1]

फलस्वरूप जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया संगीत का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया । भारतीय सभ्यता और संस्कृति से संगीत का घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है । संगीत में संसार के समस्त चराचर प्राणियों को व्यमोहित करने की विलक्षण शक्ति है । प्रकृति के समस्त उपादानों जैसे- जीव-जन्तुओं के आवाज करने में, बारिश की बूंदों में, नदियों के कलकल बहने में, झरनों के झर-झर बहने आदि में संगीत मानों संसार के रज-रज, कण-कण में व्याप्त है । संगीत ही जीवन स्रोत है । आन्तरिक शान्ति प्रदान करने वाला संगीत ही है । संगीत के माध्यम भक्ति भजन द्वारा ईश्वर तक पहुंचने में सहायता मिलती है । भक्ति साधना का आधार भी संगीत ही है -

"गीतं नादात्मकं वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशस्यते ।
तद्व्यानुगतं नृत्यं नादाधीन मतस्त्रयम् "।।[2]

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला ﴾डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ﴿, पृ. 14.

2 संगीत में ताल वाद्यो की महत्ता ﴾डॉ0 चित्रागुप्ता﴿, पृ. 1.

स्वर, शब्द (भाषा) का विकास हुआ है अतएव नाद ही संगीत का उद्‌गम स्थल है। जिस प्रकार रंगो द्वारा चित्रकला, पत्थरों को तराशकर मूर्ति इत्यादि का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार नाद को भी संगीत सृष्टि कर्ता मान सकते है। पाश्चात्य देशों में गायन-वादन तथा नृत्य इन तीनों के योग को संगीत नहीं माना गया है। बल्कि नृत्य की पृथक् सत्ता के रूप में गणना की गयी है। नृत्य को एक पृथग ललितकला के रूप में माना गया है। पाश्चात्य देशों में संगीत के लिए "म्यूजिक"[1] शब्द का प्रयोग किया गया है। तथा वहॉ आज म्यूजिक के अन्तर्गत गीत एवं वाद्य का समावेश ही प्रचार में है जबकि हमारे देश में संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों का अभिन्न साहचर्य ही संगीत है। ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक के बिना दूसरा अधूरा है। गीत का अनुगामी वाद्य तथा वाद्य का अनुगामी नृत्य है। इन तीनों की संगीत में अपनी महत्ता है। संगीत का एक अन्य नाम "गान्धार्व"[1] भी है।

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 11.

संगीत प्रायः सभी को प्रिय होता है। जिस प्रकार किसी ग्रन्थ को पढ़ने से आनन्द की अनुभूति होती है। वही आनन्द हमें संगीत के श्रवण मात्र से ही मिल सकता है। संगीत का अनुभव दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो बाह्य अंगो के द्वारा श्रवणेन्द्रियों तथा नेत्रों के द्वारा तथा दूसरी आन्तरिक रूप से अनुभव की जाती है। संगीत मानव के लिए ऐसा साधन है जिसके द्वारा उसके समस्त गुणों का विकास सम्भव है तथा आत्मानंद की प्राप्ति होती है।

प्राचीनकाल में संगीत का प्रयोग बहुत कम स्थलों पर ही होता था किन्तु आज के समय में संगीत का अत्यधिक विस्तार हो चुका है। आज के समय में संगीत की महत्ता बहुत बढ़ चुकी है। पहले संगीत केवल पूजा-पाठ तथा यज्ञादि के अवसर पर ही प्रयोग होता था किन्तु आज संगीत का प्रयोग अनेक अवसरों पर किया जा रहा है। आज संगीत के प्रस्तुतीकरण से ही कलाकार का व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है। अनेक वैज्ञानिक साधनों के आविष्कार द्वारा भी संगीत का प्रचार घर-घर हो गया है।

परिभाषा

अनादि काल से प्रचलित भारतीय संगीत का उद्गम वेदों से हुआ है। वेद चार माने गये है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इन चारों में सामवेद ही संगीतमय वेद है। पहले यज्ञादि अवसरों पर सामगान की प्रथा प्रचलित थी। परन्तु धीरे-धीरे संगीत ने धार्मिक परिधि से निकलकर मुक्त वातावरण में प्रवेश किया। तदन्तर संगीत के विविध पक्षों का विकास हुआ। गीत के साथ वाद्य तथा वाद्य के साथ नृत्य का विकास हुआ। शास्त्रकारों ने संगीत शब्द की निम्नवत व्याख्या की है -

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते"। [1]

इस प्रकार गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों का नाम ही

---

1 निबंध संगीत (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 122.

संगीत है। गीत के बिना वाद्य तथा वाद्य के बिना नृत्य सम्भव नहीं है। ये तीनों एक दूसरे पर आधारित हैं। इनमें से किसी एक के अभाव में भी हम संगीत नही कह सकते हैं, जैसे - यदि कोई व्यक्ति गीत गा रहा हों तो वह गीत हमें उतना आनन्द नही प्रदान कर सकेगा जितना उसके साथ यदि वाद्य बज रहे हों क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। तथा नृत्य इन दोनों पर आश्रित है।

"सम्यक प्रकारेण यद्गीयते तत संगीतम्"[1]

सम्य क प्रकार से अर्थात् स्वर, ताल, शुद्ध आचरण, हाव-भाव और शुद्ध मुद्रा सहित जो गया जाए वही संगीत कहलाता है।

वस्तुतः संगीत एक कला भी है और शास्त्र भी। कला के मुख्यतः दो रूप होते है - अभिजात अर्थात् क्लासिकल तथा तद्विपरित अर्थात् लाइट सुगम।

---

1 भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण (स्वतंत्र शर्मा), पृ. 1.

भारतीय परम्परानुसार संगीत का सम्बन्ध वेदों से मान्य है। तथा वेद का बीज मन्त्र ओम है। संगीत के सप्त स्वर षड्ज, रिषभ आदि ओंकार ‡ओम‡ के ही अन्तर्विभाग है। शब्द तथा स्वर की उत्पत्ति ओम से ही हुयी है। समस्त कलाएं ओम में ही निहित है। गायन, वादन तथा नृत्य ये ही संगीत की तीन शाखाएं हैं। भारत में नृत्य और नाट्य परस्पर सम्बन्धित माने गये हैं। शास्त्रकारों ने इन कलाओं को परस्परावलम्बी बतलाया है -

"नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ती च" [1]

आगे चलकर संगीत कला दो रूपों में प्रवाहमान हो गयी हैं - "मार्ग" तथा "देशी"। "मार्ग" संगीत में देशी नियमों के परिपालन द्वारा कला के परिष्कृत एवम् अभिजात रूप पर विशेष बल दिया जाता है तथा "देशी" संगीत में लोकरूचि ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। तथा इसमें

----

1 निबंध संगीत ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 122.

शास्त्रीय नियमों का पालन गौण रहता है। "मार्ग संगीत" के लिए विशेष रूप से अध्ययन, संस्कार, अभ्यास आदि अपेक्षित होते हैं जबकि देशी संगीत के लिए सहज संस्कार से युक्त प्रस्तुति ही महत्वपूर्ण होती है। मार्ग संगीत की प्रस्तुति में नियमबद्धता होना अनिवार्य है। जबकि देशी संगीत में उसकी तुलना में स्वच्छता होती है। परन्तु जहाँ तक कला-सौन्दर्य की बात है वह दोनों में ही विधमान रहता है।

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में "संगीत" का व्युत्पत्तिगत अर्थ "सम्यक गीतम्" कहा है। वराहोपनिषद की निम्न पंक्ति से इसी अर्थ का बोध होता है -

"संगीततालं लय वाद्य वशं गतापि
मौलिस्थकुम्भ परिरक्षणधीर्नटीव"[1]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से "सम्यक गीतम्" का बोध होने पर प्रचार के अन्तर्गत "संगीत" गीत, वाद्य तथा नृत्य के

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ.9.

अभिन्न साहचर्य का ज्ञापक रहा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार गीत नाटक के प्रमुख अंगो से अन्यतम है तथा वादन एवं नर्तन उसके अनुगामी है।

प्रादुर्भाव

संगीत का इस जगत में आगमन कब हुआ यह अनिश्चित ही है। सम्भवतः मानव के जन्म के साथ ही संगीत का भी जन्म हो चुका था। फलस्वरूप जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया संगीत का भी विकास होता गया। और धीरे-धीरे संगीत ने मनुष्य के सामाजिक, धार्मिक तथा विभिन्न क्रियाकलापों में अपना स्थान बना लिया है। वस्तुतः संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न आधार माने जा सकते है - धार्मिक, प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक, और वैज्ञानिक आधार।

धार्मिक आधार

भारत ऐसे देश में आदि काल से ही संगीत का सम्बन्ध ईश्वरोपासना और धार्मिक क्रिया-कलापों से रहा है। धार्मिक परम्परानुसार संगीत वेदों से सम्बन्धित रहा है। और वेदों की रचना सृष्टिकर्ता ब्रम्हा के द्वारा हुयी

है। और वेद के ही शीर्षस्थ ॐ शब्द से संगीत की सृष्टि हुयी है। और यह ॐ शब्द तीन अक्षरों का योग है अ, उ म। तथा इन तीनों ध्वनियों से ही मिलकर ओम् शब्द का निर्माण हुआ है। इसके तीनों अक्षर क्रमशः सृष्टि, पालन और विलय के द्योतक माने जाते हैं।

भारतीय ऋचाओं में वेद चार माने गये है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इन चारों वेदों में केवल सामवेद ही ऐसा वेद है जो संगीतमय है तथा इसका प्रयोग संगीत के लिए किया जाता है। संगीतमय सामवेद का प्रयोग विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता रहा है। अतः जिस प्रकार वेदों को प्रकट करने वाले ब्रुम्हा माने गये हैं उसी प्रकार संगीत कला के जन्म के सम्बन्ध में दो आदिदेव माने गये है: सृष्टि के रचयिता ब्रुम्हा तथा डमरूधारी देवाधिदेव शंकर। इस प्रकार संगीत से सभी देवताओं, ऋषियों, मुनियों आदि का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। देवी सरस्वती को वीणावादिनी कहा गया है। ब्रुम्हा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद की रचना की।

"जग्राह पाठ्यमृगवेदाद् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानामवर्णादपि " ।।[1]

संगीत के द्वारा भगवद भजन कर व्यक्ति आत्मलीन हो जाता है भक्ति साधना संगीत का एक ऐसा माध्यम है कि साध्य और साधक दोनों ही असीम सुख को प्राप्त कर जाते हैं। शब्द और स्वर इन दोनों की उत्पत्ति "ओम" से ही हुयी है। पहले स्वर की उत्पत्ति हुयी तत्पश्चात् शब्द की। मुँह से उच्चारित शब्द ही संगीत में नाद के रूप में स्वीकार है। फलस्वरूप संगीत की सृष्टि नाद से हुई है। यह एक ऐसी ललित कला है जो अपने आप में ही पूर्ण है। वस्तुतः जो व्यक्ति "ओम" की साधना करने में समर्थ है वही यथार्थ में संगीत के रूप को समझ सकते है। संगीत के अन्तर्गत स्वर, ताल, लय सभी कुछ निहित है। यही शब्द ही संगीत के जन्म का कारण है। समस्त ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। संगीत के द्वारा

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 12.

मनुष्य को भौतिक सुखों के साथ-साथ आध्यात्मिक आनन्द भी प्रदान करने वाला है। किसी भी अन्य वस्तु से प्राप्त सुख क्षणिक होता है। जिसके पहले और बाद में दुःख की सम्भावना होती है किन्तु इस दुःखमय संसार में संगीत से प्राप्त सुख ही असीम आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

संगीत की प्रशंसा में याज्ञवल्क्य स्मृति में भी कहा गया है -

वीणा वादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः ।
तालज्ञश्चप्रयासेन मोक्षमार्ग निगच्छति ।।[1]

वीणा वादन में नारद और तुबंरू प्राचीन काल से अति प्रसिद्ध रहे हैं। संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है। देवताओं के आदिदेव शंकर संगीत को सृष्टिकर्ता माने गये हैं। समस्त विधाओं की देवी सरस्वती वीणा वादिनी कहलायीं, मंगलमूर्ति गणेश मृदंग वादक बने। नारद

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 15.

ने वीणावादन और गान से ही भगवान को वशीभूत किया । भगवान कृष्ण ने वंशी वादन कर समस्त सृष्टि को चमत्कृत कर दिया । ऋषियों मनीषियों में बाल्मीकि, तुबंरू, भरत याज्ञवल्क्य आदि ने संगीत को न केवल सर्वोत्तम कला सिद्ध किया अपितु संगीत को मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया । भक्ति-मार्ग में संगीत का बहुत महत्व रहा है । संगीत के साथ भगवत भजन करने से मन संगीत की मनोहर शक्ति द्वारा शीघ्र ही ईश्वर के नाम रूप में लीन हो जाता है । इसके द्वारा साध्य और साधन दोनों ही सुख को प्राप्त करते हैं । संगीत एक पूजा है इसमें अत्यन्त एकाग्रता की आवश्यकता होती है । नाद ब्रम्ह स्वरूप है क्योंकि मनुष्य आत्मलीन होकर ही ब्रम्हलीन हो सकता है । ब्रम्ह साक्षात्कार का सीधा माध्यम है संगीत । मन्दिरों, मस्जिदों में पूजन अर्चन के समय पर संगीत का ही प्रचलन है । जो संगीत के महत्व को प्रदर्शित करते हैं । मन्दिरों में आरती तथा भजन आदि के समय प्रयुक्त संगीत से मन निश्छल होकर हृदय में भावुकता, तन्मयता उत्पन्न हो जाती है । जिसके द्वारा मनुष्य अपने बुरे कर्मों को भूलकर ईश्वरोपासना में लीन हो जाता है । और उसे असीम आनन्द की प्राप्ति होती है । इस प्रकार संगीत ही ऐसा माध्यम है जिसके

द्वारा आत्मानन्द तक पहुंचा जा सकता है। भारतीय आचार्यों ने संगीत को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों की प्राप्ति सर्वोत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया है -

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः ।।

सामगीतिरतो ब्रम्हा वीणासक्ता सरस्वती ।
किमन्ये यक्षगन्धर्वदेवदानवमानवा : ।।

अज्ञातविषयास्वादो बालः पर्यङ्किकागतः।
रूदन्गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ।।

वनेचरस्तृणाहारश्चित्रं मृगीशतुः पशुः ।
लुब्धोलुब्धक संगीते गीते यच्छति जीवितम्।।

तस्य गीतस्य महात्म्यं के प्रशंसितुमीशते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणमिदमेवैक साधनम् ।।[1]

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 15.

समस्त ललित कलाओं में श्रेष्ठ भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत से ही ईश्वर प्राप्ति एवं मोक्ष प्राप्ति सम्भव है। वस्तुतः संगीत के जन्म का कारण ईश्वरोपासना अवश्य रहा है। धर्म और संगीत का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

शिव पुराण के उल्लेखानुसार नारद की अनन्त कालीन योग साधना से प्रसन्न होकर ही भगवान शंकर ने उन्हें संगीत कला की शिक्षा दी थी। तथा पार्वती की शयन मुद्रा में अवस्थित अंग प्रत्यंगो को देखकर, उन्हीं के आधार पर शिव ने वीणा नामक तंत्र वाद्य की रचना की तथा अपने पंचमुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की थी और पार्वती के श्रीमुख से छठा राग उत्पन्न किया होगा। शिव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवम् आकाशस्थ मुखों से क्रम से भैरव, हिण्डोल, मेघ, दीपक, तथा श्रीराग प्रकट हुए। पार्वती के मुख से कौशिक राग उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में संगीत का प्रयोग केवल धार्मिक अनुष्ठानों पर ही होता था किन्तु आज संगीत का विस्तार क्षेत्र बढ़ गया है। आज हर अवसर पर समय-समय पर संगीत का प्रयोग होने लगा है। इस प्रकार यह निश्चित रूप से कह सकते है कि धर्म और संगीत में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

प्राकृतिक आधार

संगीत ऐसी ललित कला मनुष्य को प्रकृति से ही प्राप्त हुयी है। इसी लिए विद्वानों ने संगीत की उत्पत्ति का आधार प्रकृति को ही माना है। संगीत चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य मानव जीवन से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहा है। इस सम्बन्ध में ग्रीक विचारक पायथागोरस के मतानुसार "विश्व के अणु-रेण में संगीत परिव्याप्त है।"[1]

एक अन्य परम्परानुसार संगीत की उत्पत्ति में पशु-पक्षियों विभिन्न ध्वनियों का ही योगदान है। दामोदर पण्डित के अनुसार संगीत के सात स्वरों का आविर्भाव सात विभिन्न पशु पक्षियों की ध्वनियों द्वारा हुआ है -

> षड्जं वदति मयूरः पुनः स्वर ऋषभं चातको ब्रूते।
> गान्धाराख्यं छागो निगदति च मध्यम क्रौं चः।।

---

1 भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण (स्वतंत्र शर्मा), पृ. 2.

गदतिं पञ्चममपि चतवाक् पिको रटति धैवतमुन्मर्दुरः ।
शृणिसमाहतमस्तककुञ्जरो गदति नासिकया स्वरमन्तिकम्।।[1]

अर्थात् मोर षडज स्वर का, चातक ऋषभ का, अजा से गान्धार, क्रौंच मध्यम का, कोकिल पंचम स्वर का मेढ़क धैवत स्वर का तथा हाथी मस्तक पर अंकुश का आघात किये जाने पर अपनी नाक में से अन्तिम स्वर निषाद का स्वरोच्चारण करता है ।

प्रकृति के विविध उपादानों से ही मानव को संगीत की प्रेरणा मिली है । प्रकृति में विभिन्न ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, जैसे- बिजली के चमकने में, वर्षा की बूंदो में , झरनों के झर-झर बहने में, हवाओं के झोंकों में, वृक्षों के हवा के साथ हिलने में भी एक विशेष संगीतात्मक ध्वनि एवं लय होती है । धीरे-धीरे मनुष्य इन ध्वनियों को सुनकर आनन्द की अनुभूति करने लगा । फलस्वरूप उसने इन ध्वनियों को और अधिक मधुर संगीत मय बनाने के लिए स्वरों का विचार किया । वस्तुतः

---

1 संगीत में ताल बाद्यों की महत्ता ।डॉ० चित्रा गुप्ता।.

इतना अवश्य निश्चित होता है कि संगीतात्मक ध्वनि का आधार प्राकृतिक ध्वनियां ही रही हैं।

एक अन्य विद्वान जी. एच. रानाडे संगीत का जन्म बुलबुल पक्षी से मानते हैं।[1]

कुछ लोगों के मतानुसार कोहकाफ़ में एक पक्षी है जिसे फारसी में "आतिशजन" कहते हैं। इस पक्षी की चोंच के सात छिद्रों से सात प्रकार के स्वर निकलते हैं जिन्हें सात मुख्य स्वर मान लिया गया।

संगीतोत्पत्ति के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि संगीत की उत्पत्ति प्रकृति के विभिन्न उपादानों से उत्पन्न ध्वनियों के आधार पर हुयी है इसी प्रकार कुछ वाद्यों की उत्पत्ति का आधार भी प्रकृति के आधार पर हुआ है। जैसा कि स्वाति और नारद संगीत वाद्यों के आदि ग्रन्थकर्ता माने गये हैं।

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 13.

"वायुवेग से सरोवर में वर्षा की बूंदो के
पड़ते समय पद्म की छोटी, बड़ी और
मंझोली पंखुड़ियों पर वर्षा बिन्दुओं के
आघात से उत्पन्न विभिन्न ध्वनियों के
आधार पर स्वाति ने विभिन्न पुष्कर
वाद्यों की सृष्टि की।"[1]

यदि दृढ़ता से विचार करे तो संगीत की उत्पत्ति का मूलाधार ईश्वर द्वारा रचित प्रकृति ही है क्योंकि नाद और गति ये दोनों ही तत्व हमें प्रकृति के विविध उपादानों से प्राप्त हुए हैं। मानव ने इसी नाद और "गति" को अपनी बुद्धि के द्वारा संशोधित तथा परि-मार्जित किया। वहीं "नाद" और "गति" के ही परिष्कृत रूप "स्वर" और "लय" के रूप में प्रस्फुटित हुआ। इन्ही स्वर और लय को व्यवस्थित करने पर जो रूप सामने आता है वह "संगीत" है।

----

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 14.

मनोवैज्ञानिक आधार

मानव के विकास क्रम के साथ ही संगीत का भी विकास क्रम जुड़ा है। अतएव जैसे-जैसे मानव का मन विभिन्न दिशाओं में विकसित होने लगा वैसे ही अन्य कलाएं भी विकसित होने लगीं। बालक के जन्म लेते ही उसके रोने की ध्वनि निकलती है और जैसे-जैसे वह बढ़ता जाता है उसके विभिन्न क्रिया-कलापों से भी ध्वनियां निकलती जाती है। अतः गायन वादन इसी ध्वनि के सहज विकास है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि में "कला संवेगों का अभिव्यक्तिकरण" ही संगीत कहा जाता है।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य आत्मानंद ही है। तथा इसी आत्मोपलब्धि में ही मानव जीवन की सार्थकता है। और इसकी प्राप्ति का संगीत ही ऐसा माध्यम है जिससे आत्मानंद की प्राप्ति हो सकती है।

मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए संगीत अत्यन्त आवश्यक है। मानव स्वास्थ्य पर संगीत का पर्याप्त प्रभाव है संगीत में एक ऐसी अनोखी शक्ति होती है कि मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति को भी ठीक

किया जा सकता है। संगीत की प्रस्तुति में किसी भी कलाकार का व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है।

संगीत के स्वर की व्याख्या में कहा जा सकता है "स्वरः रंजयति इति स्वरः"। स्वर हमारी कर्ण-तन्त्रियों में प्रवेश करते ही हमारी आन्तरिक चेतना को निश्चय ही अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। और श्रोता सभी चीजों को भूलकर घण्टों आनन्द की अनुभूति करता है। भारतीय परम्पराओं में दार्शनिकों, योगियों, भक्तों ने संगीत का प्रयोग परमानन्द की प्राप्ति के लिए किया है वहीं दूसरी ओर सामान्य नागरिकों ने संगीत को सामाजिक उत्सवों तथा अपने मनोरंजन के लिए प्रयोग किया है। यहाँ तक कि दर्शन की विविध परम्पराओं आपसी मतभेद होने पर भी संगीत को एक मत से माना है। यह संगीत की आध्यात्मिक निष्ठा का ही परिणाम है।

समस्त ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है। संगीत प्रायः सभी को प्रिय होता है। जिस प्रकार किसी ग्रन्थ को पढ़ने से आनन्द प्राप्त होता है वही आनन्द हमे संगीत के श्रवण मात्र से प्राप्त हो जाता है।

भारतीय संगीत के दो अंग है - एक बाह्य अंग जो नेत्रों तथा श्रवणेन्द्रियों के द्वारा अनुभव किया जाता है और दूसरा अन्तरंग। संगीत मानव मात्र की आत्मा का ऐसा भोजन है, जिसके अभाव में मानवोचित गुण फूल फल नहीं सकते। मनोवैज्ञानिकों ने संगीत कला के सम्बन्ध में भी यही माना है कि मानव ने अपनी विभिन्न भावनाओं ध्वनियों की सहायता से अभिव्यक्त किया और उसी से संगीत की उत्पत्ति हुई।

<u>वैज्ञानिक आधार</u>

वैज्ञानिक दृष्टि से संगीत की सृष्टि ध्वनि आन्दोलनों का परिणाम है। जब भी कभी दो वस्तुएं आपस में टकरा जाती है अथवा रगड़ जाने पर अपने पास की वायु को आन्दोलित करती है। तथा जलतरंग की भांति वह वायु वातावरण में ये कम्पन उत्पन्न करती हुई हमारे कर्णरन्ध्रों में प्रवेश कर प्रकृति प्रदत्त कर्णयन्त्र को स्पन्दित करती है। जिससे हमारी चेतना को ध्वनि का अनुभव होता है। जब तक हमारे कर्ण-यन्त्र वातावरण में उत्पन्न आन्दोलनों को ग्रहण नहीं करते तब तक हमारे लिए ध्वनि का कोई अस्तित्व नहीं

होता । यद्यपि विश्व नाद से भरपूर है किन्तु हम अपने कर्णयन्त्रों की सीमित शक्ति के कारण उन सभी का श्रवण नही कर पाते ।

वैदिक काल से वर्तमान काल तक का स्वरूप

भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग ही प्राचीनतम् युग है । मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ भारतीय संगीत का विकास भी शनैः शनैः वैदिक युग में ही होने लगा था । जहाँ तक अन्य देशों के संगीत की बात है विश्व के समस्त देशों में भारतीय संगीत ही सर्वाधिक प्राचीन है । आर्यों के आगमन के साथ ही वैदिक युग का आरम्भ माना जा सकता है । इस काल में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था । इस युग में संगीत का प्रचार बाहर की अपेक्षा घरों में अधिक होता था। लगभग सभी घरों में सुबह शाम संगीतमय ईश्वर आराधना होती रहती थी ।

भारत में विदेशियों का आवागमन होता रहा और जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी हमारी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित हुए और उनकी संस्कृति भारत-

वासियों पर प्रभाव डाला। ईरान का संगीत विदेशियों के द्वारा ही हमारे देश में आया। यहाँ तक कि भारत के ही विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न संगीत दिखाई देता है। उत्तर भारत में उत्तरी संगीत तथा दक्षिण भारत में दक्षिणी संगीत जिसे कर्नाटक संगीत भी कहा गया। वैदिक काल में ही चतुर्वेदों की रचना तथा उसके विविध अंगों का विस्तार हो चुका था।

ॠग्वेद काल में गायन वादन तथा नृत्य तीनों का प्रचलन था। स्वर और वाद्य दोनों एक दूसरे के साथ शोभा पाते हैं। ॠग्वेद में निम्न वाद्यों के उल्लेख पाये जाते हैं - यथा दुन्दुभि, बाण, नाड़ी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा अघाटि, दुन्दुभी तथा भूमि दुन्दुभि उस समय के प्रमुख अवनद्ध वाद्य थे।

तत् वाद्यों के अन्तर्गत कर्करि, गर्गर, [illegible]ी आदि वाद्यों का उल्लेख ॠग्वेद में उपलब्ध है। शाट्‌यायन ब्राह्मण के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि उस समय प्रातः काल पर मंगलवाद्य के रूप में वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था। उस समय में प्रचलित "पिङ्.गा" धनुष के आकार का तत वाद्य है तथा "श्रवणास्त्र" अर्थात् आधुनिक वायलिन नामक वाद्य से मिलता

जुलता है । ऋग्वेद में गीत तथा वाद्य के साथ नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रांगण में तथा उन्मुक्त वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता था । जिसमें नर तथा नारी दोनों ही भाग लेते थे ।

यजुर्वेद में सामगायक का सर्वप्रधान स्थान है । यजुर्वेद में विभिन्न सांगीतिक वाद्यों वीणा, वाण, तूणव, दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि, शंख आदि का वर्णन मिलता है ।

यर्जुः संहिता में वीणा के महत्व को भी बताया गया है । अश्वमेघ आदि यज्ञों में मनोरंजन के लिए गाथा गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था । वीणा तन्तु वाद्य के लिए उसका विशाल स्वरूप वाण कहलाता था । इसी के अन्तर्गत अघाटी, धाटलिका, काण्डवीणा, पिच्छौला अर्थात् पिच्छौरा, ताल्लुकवीणा, गोधावीणा, अलाबु, कपिशीर्ष्णी, कर्करी अथवा कर्करीका इत्यादि विशिष्ट प्रकारों का विकास सूत्रकाल तक पाया जाता है । वीणा को साक्षात् श्री का स्वरूप माना गया है । तत्कालीन लोकोत्सवों में इन वाद्यों के श्रवण से लोग रातभर जागरण किया करते थे । गायन वादन एवं नर्तन समाज में एक व्यवसाय बन गये थे ।

गाथा, नाराशंसी आदि लौकिक गीतों का गान विवाहादि प्रसंगों पर किया जाता था। गीत वाद्य तथा नृत्य की सामूहिक ध्वनि का संकेत निम्न मंत्र में हुआ है।

यष्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवा: ।
युध्यन्ते यस्यामा क्रन्द्रो यस्मां वदति दुन्दुभि: ।।[1]

सामगान गन्धर्व काल में समृद्धि को पहुंच चुका था। विविध क्रिया-कलापों में उसको स्थान था। पितरों की ईष्टापूर्ति: में सामगान का गायन होता था।

सामवेद का प्राचीन संगीत की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। "गीता" में श्री कृष्ण ने यह कह कर कि "वेदानां सामवेदोऽस्मि" सामवेद के महत्व को स्पष्ट किया है। सामवेद के द्वारा संगीत को नियम और विधान से आवद्ध कर दिया गया। पहले सामगान में केवल तीन स्वर "उदात्त, अनुदात्त और स्वरित

---

1 निबन्ध संगीत ‡ लक्ष्मी नारायण गर्ग ‡.

प्रयोग होते थे। धीरे-धीरे विकास होता गया और अन्य स्वरों की स्थापना होती गई। और वैदिक काल में ही सामगान सात स्वरों में होने लगा।

साम शब्द का मूलार्थ गान अर्थात् गेय वस्तु रहा है। सामवेद के दो प्रधान ग्रन्थ या भाग है ﴾1﴿ आर्चिक ﴾2﴿ गान। साम के सात स्वरों की उत्पत्ति तीन स्वरों उदात्त अनुदात्त और स्वरित से हुई।

> उदात्ते निषाद गान्धारौनुदात्त ऋषभधैवतो।
> स्वरित प्रभवाह्येते षडज मध्यम पंचमाः ॥[1]

सामवेद प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संगीत से पूर्ण है। सामगान में वीणा, भूमि दुन्दुभि, आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। सामवेद में संगीत का विकसित रूप देखने को मिलता है।

वैदिक काल में चतुर्विध वाद्यों का विकास हुआ

---

1 संगीत में ताल वाद्यों की महत्ता ﴾डॉ० चित्रा गुप्ता﴿, पृ. 5.

था । सामगान में ताल की संगति के लिए प्रारम्भ में भूमि दुन्दुभि नामक चर्म वाद्य का प्रयोग होता था । यज्ञ मण्डप में भूमि खोदकर तथा उस के ऊपर बैल के चमड़े को मढ़ कर करते थे तथा बैल की पूंछ से ही प्रहार भी करते थे । इसके अतिरिक्त अन्य चर्म वाद्यों में दुन्दुभी द्रव्य, केतुमत, विश्वगोत्र्य के नाम आये है ।

वैदिक युग के तन्तु वाद्यों के नाम "हिरण्यकेशीसूत्र" में प्राप्त होते है । जिसके आधार पर ताल्लुकवीणा, काण्डवीणा, पिच्छोरा, अलाबुवीणा, कपिशीर्षवीणा आदि इन सभी वाद्यों को अधारी कहा गया है ।[1]

वाण नामक शततंत्री वाद्य था जिसमें 100 तार दूब या मूंज के बनाकर लगाये जाते थे । इसके अतिरिक्त कर्करी, मर्गर, बकुर, आडम्बर आदि तन्तु वाद्यों के नामों का भी उल्लेख मिलता है ।

वैदिक युग में वीणा वाद्य का विशेष महत्त्व था ।

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लाल मणि मिश्र), पृ. 20.

वीणा वाद्य के अनेक नाम प्रचलित थे जिनमें महती, पिनाकी, कात्यायनी, रावणी, मत, घोषवती, कच्छपी, कुब्जिका आदि। वीणा के अनेक प्रकार भी थे जैसे गज से बजने वाली वीणा, पीनाकीनेतर के दण्ड से बजाने की वीणा आदि।

इस प्रकार वैदिक काल में संगीत का सर्वमुखी विकास हो चुका था। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों अभिन्न साहचर्य के रूप में विकसित हो रहे थे। वैदिक काल में संगीत के आन्तरिक तथा बाह्य सौन्दर्य के दोनों अंगों का विकास हुआ। वैदिक काल में संगीत कला तथा शास्त्र दोनों सर्वोच्च शिखर पर विद्यमान थे। आध्यात्मिक, सामाजिक, कलात्मक सभी दृष्टियों से संगीत का विकास हुआ। सभी लोगों ने संगीत को अपने-अपने घरों में ईश्वरोपासना के निमित्त प्रयोग किया। इस प्रकार वैदिक युग संगीत के सर्वाङ्गीण विकास के लिए याद रहेगा।

प्राचीन काल

वैदिक काल में विकसित भारतीय संगीत का प्रचार प्रसार इस काल में भी रहा। ब्राम्हण तथा उपनिषद काल में संगीत की विशेष उन्नति दिखाई देती है। इस काल में वीणा में अनेक परिवर्तन हुए। इस समय नृत्य के साथ भी वीणावादन होता था। इस काल तक मूँज अथवा दूर्बा के स्थान पर धातु निर्मित तन्त्रियों का प्रयोग होने लगा था।

प्राचीन काल में संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष का अधिक विकास हुआ तथा रास आदि नृत्य की नवीन शैलियों का भी विकास हुआ। पुराणों में विभिन्न वाद्यों के उल्लेख भी मिलते हैं। तंत्री वर्ग के वाद्यों के अन्तर्गत वीणा, सुषिर वर्ग में वेणु, शंख, अवनद्ध वर्ग में मृदंग दर्दुर, पणव, पटह, आनक, दुन्दुभि, तथा धन वर्ग में घंटा आदि वाद्यों का विशेष प्रचलन था।[1]

---

1 संगीत में ताल वाद्यों की महत्ता ‡डा० चित्रा गुप्ता‡, पृ० 5.

पुराण काल के ग्रन्थों में रामायण तथा महाभारत का विशेष स्थान था। जिस प्रकार वैदिक काल में संगीत का पर्याप्त विकास हुआ था। उसी प्रकार रामायण ऐसे महाकाव्य में भी विभिन्न स्थानों पर संगीत का प्रयोग देखने पर प्रतीत होता है कि इस समय भी संगीत विकास की ओर था। संगीत के लिए रामायण में गान्धर्व संज्ञा उपलब्ध होती है। बाल्मीकि रामायण में विपंची जैसी प्राचीनतम वीणा की चर्चा है परन्तु किन्नरी जैसी सारिकायुक्त परवर्ती वीणा की चर्चा नही हैं। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक सारिका युक्त वीणाओं का जन्म नही हुआ था। उस समय पुरूष और नारी धनी और निर्धन सभी के लिए संगीत अनुशीलन का विषय था।

बाल्मीकि रामायण तथा उस परवर्ती ग्रन्थों में सामाजिक जीवन के साथ जिस संगील का सम्बन्ध दिखाया गया है वह गान्धर्व संगीत ही है। रामायण में संगीत के लिए गान्धर्व संज्ञा के साथ-साथ संगीत ज्ञाता के लिए गन्धर्व तत्वज्ञ शब्द भी प्राप्त होता है। गान किस प्रकार हो इस विषय पर रामायण में उल्लेख प्राप्त होता है -

"पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाण स्त्रिभिरान्वितम् ।
जातिभिः सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलय समन्वितम् ।।
रसैः श्रृंगार करूण हास्य रौद्र भयानकैः ।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतद् गायताम्।।"[1]

ई वाल्मीकि रामायण ई

रामायण काल में संगीत पावनता को पहुंच गया था। प्रातः काल संगीत के माध्यम से प्रत्येक गृह में ईश्वरोपासना होने लगी थी। प्रत्येक घर में संगीत का वातावरण था। महाराजा दशरथ पुत्र होने पर खुशी मनाने में संगीत का प्रयोग, विवाह, वनवास जाकर लौटने की खुशी आदि अवसरों पर विभिन्न वाद्यों तथा गीतों का प्रयोग होता था। नृत्य में घुंघरूओं की ध्वनियां सुनाई पड़ती थी। वीणा तथा मृदंगादी वाद्य यंत्रों का वादन किये जाने का भी वर्णन प्राप्त होता है। युद्ध में विजय प्राप्त करके लौटने पर दुन्दुभी बजाकर स्वागत

---

1 भारतीय संगीत वाद्य ईडॉ० लालमणि मिश्र ई, पृ. 23.

किया जाता था। इसी काल में रावण द्वारा गज वाले वाद्य "रावणास्त्र" का आविष्कार हुआ। आधुनिक वायलिन इसी का रूप है। इस प्रकार रामायण काल में संगीत के तीनो अंगों गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का पर्याप्त विकास तथा प्रचलन था। उस समय के सभी राजा महाराजाओं को संगीत प्रिय था। महलों में संगीतमय वातावरण बना रहता था। उस समय का सर्वप्रमुख वाद्य दुन्दुभी था।

महाभारत का काल रामायण के पश्चात् आता है इस कारण इस काल तक संगीत अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच गया था। महाभारत काल में संगीत नर-नारियों में विख्यात था।

महाभारत काल में साम एवं गान्धर्व दोनों का प्रचार था। गीत, नाटक, नृत्य आदि का प्रयोग समय-समय से विभिन्न अवसरों पर किया जाता था। भगवान श्री कृष्ण वंशी वादन में तो प्रवीण थे ही साथ-साथ गायन-वादन तथा नृत्य में भी पारंगत थे।

अर्जुन उस युग के सुप्रसिद्ध वीणा वादक थे। विराट पर्व में अर्जुन ने अज्ञातवास के समय बृहन्नला रूप में राजा

विराट के अन्तःपुर में संगीत शिक्षण का कार्य किया :

> गीतं नृत्तं विचित्र च वदिन्त्तं विविधं तथा ।
> शिक्षयिष्याम्हयं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः ।।[1]

इस काल में धर्म और संगीत का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा । महापुरूषों के आगमन के समय भी संगीत का आयोजन होता था तथा उनके नगर छोड़ने में भी संगीत-पूर्ण विदाई का आयोजन होता था । देवराज इन्द्र की सभा में अर्जुन का गीत, वाद्य, नृत्य से स्वागत किया गया था, जिसमें तुबंरू आदि गन्धर्वों ने वीणादि वाद्यों के साथ गान किया । तथा अप्सराओं ने नृत्य किया । वीणा अधिक प्रचार में थी इसके अतिरिक्त इस काल में भेरी, मृदंग, मुरज, पटह, परह, आदि वाद्यों का विशेष प्रचलन था । शंख सर्वप्रमुख वाद्य था । जो युद्धादी अवसर पर बजाया जाता था ।

उस काल में जन साधारण के लिए भी संगीत

---

1 भारतीय संगीत वाद्य ‌‍(डॉ० लालमणि मिश्र), पृ. 24.

शिक्षा की व्यवस्था थी। इसी काल में "नाट्यशास्त्र" भरत के आदि संगीत ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हैं इसमें बहुविचित्र वाद्य यन्त्रादि की निर्माण प्रणाली का परिचय दिया गया है। बृहद्देशी नाट्यशास्त्र के समान एक विशाल ग्रन्थ है। मतंग भरत के अनुगामी शास्त्री थे। वे विचित्र वीणा वादक एवं किन्नरी वीणा के आविष्कारक भी थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम वीणा में सारिका प्रयुक्त की थी। अतएव महाभारत काल में संगीत का अत्यधिक प्रचार हुआ। महाभारत में तत, वितत, घन एवं सुषिर वाद्यों का उल्लेख भी मिलता है यज्ञ के समय वीणा का वादन भी होता था।

महाकाव्य काल में सामगान के साथ-साथ उसके वाद्य क्षेत्र में गान्धर्व संगीत का प्रचलन था। इसमें गायन वादन दोनों का अन्तर्भाव था। संगीत के कलापक्ष के साथ-साथ शास्त्र पक्ष का भी विकास हुआ।

जैन काल में संगीत का उन्मुक्त विकास हुआ जो संगीत पहले ब्राह्मण वर्ग तक सीमित था इस समय सर्व-साधारण के हाथों में आ गया। राजा महाराजा भी संगीत प्रिय होते थे। समय-समय पर संगीत प्रतियोगिताओं

का आयोजन हुआ करता था । इस काल में भाँति-भाँति के संगीत वाद्य प्रचार में थे जैसे विपंची, महत्ती, वल्लकी, शंख, वेणु, मृदंग, पणव, भेरी, दुन्दुभी इत्यादि। वीणा वाद्य का विशेष उल्लेख मिलता है ।

बौद्ध-काल में संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया । इस काल में संगीत तथा नृत्य, नाटक आदि को राजाश्रय प्राप्त था । इस युग में शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था । गायन का आधार वीणा थी । भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों को गीतों का रूप देकर बौद्ध भिक्षुओं ने जगह-जगह प्रचार कर वहाँ की जनता को जाग्रत किया ।

बौद्ध काल में तत, वितत, घन तथा सुषिर इन चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख मिलता है। तत वाद्यों में वीणा, परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपी तथा तुम्ब वीणा । वीणा उस समय का सर्वप्रिय वाद्य था । महात्मा बुद्ध को भी इस वाद्य ने प्रभावित किया । इस काल में वीणाओं की प्रतियोगिताएं होती थी । संगीत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे गये है ।

मौर्यकाल में संगीत के क्षेत्र में विशेष उन्नति नही

हुयी । यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य स्वयं संगीत प्रेमी था और संगीत को राजाश्रय भी प्रदान किया, कलाकारों को भी समय-समय पर पुरस्कृत किया किन्तु फिर भी संगीत की उन्नति बौद्ध काल के समान नही हुयी । संगीत केवल मनोरंजन का साधन मात्र था । इस युग में किसी नवीन वाद्यों का विकास नही हुआ था । वीणा मृदंग मंजीरा, ढोल, वंशी, दुन्दुभी, ढफ आदि वाद्य ही प्रचार में थे ।

गुप्तकाल भारतीय इतिहास में ललित कलाओं, संगीत, साहित्य आदि के विकास की दृष्टि से स्वर्ण युग रहा है । इस युग के राजाओं में संगीत के प्रति विशेष प्रेम था तथा उन्होंने भारतीय संगीत के विकास के लिए प्रयत्न भी किये । गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के साथ संगीत उच्च स्तर पर पहुंच चुकी थी । संगीत के शास्त्रीय तथा लौकिक दोनों पक्षों का विकास इस काल में हुआ । भारत तथा चीन के मध्य अनेक वाद्ययन्त्रों का भी आदान प्रदान हुआ । "भरतपुत्र दत्तिल ने "दत्तिलम्" की रचना इसी काल में की । यह ग्रन्थ भी नाट्यशास्त्र के समान भारतीय संगीत की गौरवशाली रचना है ।

गुप्तकाल के समान हर्षवर्धन काल में संगीत का

विकास क्रम चलता रहा। राजा हर्ष स्वयं संगीत प्रिय था उसका संगीत सम्बन्धी ज्ञान उच्चकोटि का था। उसने स्वयं कई नाटक तथा कविताएं लिखी थी। हर्ष काल में महान संगीतज्ञ मतंग द्वारा बृहद्देशी नामक ग्रन्थ की रचना की गयी। इसमें इन्होंने जातिगायन के स्थान पर राग गायन का उल्लेख किया है। जो संगीत के इतिहास में सर्व्रप्रथम इसी में वर्णित है। राग शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इसी में किया गया है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत छोटे राजपूत राज्यों में बंट गया जो राजपूत काल के नाम से जाना जाता है। इसी युग में घराने की नींव पड़ी। इसी समय नारद ने नारदीय शिक्षा की रचना की।

इस प्रकार प्राचीन काल भारतीय संगीत के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। अनेक नवीन वाद्यों का आविष्कार हुआ। संगीत राजा महाराजाओं से लेकर सर्वसाधारण में भी विद्यमान था। संगीत मनोरंजन का मुख्य साधन था। तात्पर्य यह है कि संगीत के शास्त्रीय पक्ष तथा लौकिक दोनों पक्षों का विकास हुआ।

मध्यकाल

प्राचीन काल के समान मध्यकाल में भी संगीत की उन्नति तथा विकास का क्रम अवरुद्ध न होकर चलता रहा। मध्यकाल का प्रारम्भ लगभग 11 वीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर 18 वीं शताब्दी तक रहा है। इसी काल में भारतीय संगीत तथा संगीतज्ञों को रियासतों में संरक्षण तथा आश्रय प्रदान किया गया। 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारतीय संगीत मुगल शासकों के प्रभाव से मुक्त होकर नवीन रूप से विकसित होने लगा और इसी समय भारतीय संगीत दो शाखाओं में विभक्त हो गया। उत्तर भारतीय संगीत तथा दक्षिण भारतीय संगीत। दक्षिण भारतीय संगीत मुस्लिम प्रभाव से मुक्त स्वच्छन्द रूप से अपनी प्राचीनता को संजोये हुए विकसित हुआ। इसके विपरीत उत्तर भारतीय संगीत मुस्लिम सम्पर्क से प्रभावित हुए बिना न रह सका। प्राचीनकाल में अति पवित्र ईश्वर की आराधना का मुख्य साधन समझा जाने वाला संगीत का आध्यात्मिक रूप नष्ट होने लगा तथा विलासिता पूर्ण होने लगा।

मध्यकाल के पूर्व में प्रबन्ध गायन विशेष रूप से

प्रचलित था इसी कारण इसे प्रबन्ध काल के नाम से जाना जाता रहा है । इसके अतिरिक्त इस काल में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की भी रचना हुयी । संगीत जगत के श्रेष्ठतम संगीतज्ञों द्वारा नवीन रचनाएं सामने आयीं । संगीतशास्त्री अभिनवगुप्त ने अलंकारशास्त्र पर लोचन व अभिनव भारती नामक दो टीकाओं की रचना की तथा 12 वीं शताब्दी के सोमेश्वर ने "अभिलाष चिन्तामणि" व "मानषोल्लास" नामक ग्रन्थों की रचना की तथा 13 वीं शताब्दी में महान संगीतशास्त्री शारङ्गदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा गया । जो सम्पूर्ण भारत में संगीत जगत के लिए अमूल्य निधि है । इस काल में अनेक संगीत ग्रन्थों की रचना भी की गई है जिनमें "मानकौतुहल", रामामात्य ने "स्वरमेलकलानिधि" तथा "संगीत दर्पण" की रचना पं0 दामोदर ने की, पुण्डरीक विट्ठल ने "रूद्राग चन्द्रोदय", "राग मंजरी", "राग माला", एवं नर्तन निर्णय, तथा लोचन ने राग तरंगिणी व राग सर्वसंग्रह नामक ग्रन्थों की रचना की।

17 वीं शताब्दी के संगीतशास्त्रियों में हृदय नारायण देव ने "हृदयकौतुक", हृदय प्रकाश", अहोबल ने संगीत पारिजात, पण्डित व्यंकटमुखी ने चर्तुदण्डी प्रकाशिका

इसके अतिरिक्त राग तत्व विबोध के रचयिता श्री निवास मध्ययुग के अन्तिम संगीतशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार मध्यकाल भारतीय संगीत के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना को देखते हुए यह निश्चित है कि इस काल में संगीत का चतुर्मुखी विकास हुआ है। इसी युग में संगीत के महान संगीतशास्त्रियों ने भी विभिन्न ग्रन्थों की रचना की थी। ये सभी संगीत ग्रन्थ संगीत तत्वों एवं तथ्यों से परिपूर्ण है।

इस काल में संगीत के क्षेत्र में बहुत से परिवर्तन हुए। अनेक राग-रागनियों का जन्म, विभिन्न ताल तथा वाद्यों का जन्म, विभिन्न गायकियों का प्रादुर्भाव इस काल में हुआ। बाबर हुमायुँ के शासनकाल में कव्वाली गजल आदि गायन शैलियों का प्रचार था साथ ही साथ शास्त्रीय संगीत का भी विकास होता रहा। इनके शासन काल के पश्चात् ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद शैली का विकास किया और सर्वप्रथम ग्वालियर घराने का विकास किया। आपने संगीत के क्षेत्र में बहुत विकास किया। मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में भारतीय संगीत का बहुत विकास हुआ। इसी कारण

भारतीय संगीत की दृष्टि से यह काल "स्वर्ण युग" कहा गया है। इसी काल में सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन हरिदास, बैजू बावरा आदि ने अनेक शैलियों का आविष्कार किया। इस काल में अनेक संगीत वाद्यों मंजीरा, तबला, सितार आदि वाद्यों का जन्म हुआ। इस प्रकार इस काल में संगीत का बहुमुखी विकास हुआ। संगीत के विकास की यह गति मुगल सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में अवरूद्ध हो गया क्योंकि औरंगजेब संगीत का कट्टर विरोधी था। परन्तु फिर भी संगीत का महत्वपूर्ण ग्रन्थ "संगीतपारिजात" लिखा गया।

औरंगजेब के पश्चात मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले बहादुरशाह जफ़र के शासन काल में की प्रगति पुनः प्रारंभ हो गई। ख्याल गायकी का विकास इसी काल में हुआ। इसके अतिरिक्त त्रिवट, तराना आदि का प्रचार भी इसी काल में हुआ।

इस प्रकार मध्यकाल में संगीत का बहुमुखी विकास तथा उन्नति हुयी संगीत के क्षेत्र में अनेक नवीन परिवर्तन आये विभिन्न शैलियों का जन्म हुआ। ख्याल, टप्पा, तराना, गजल कव्वाली आदि गीत के प्रकार प्रचार में आये। साथ ही साथ अनेक नवीन वाद्यों का भी विकास

हुआ जिनमें सितार तथा तबला मुख्य हैं। इसी काल में इन वाद्यों का प्रचार प्रसार भी काफी बढ़ा है। इस काल में भी संगीत का प्रचार भक्ति की ओर भी बढ़ा।

आधुनिक काल

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध समय से ही आधुनिक काल के नाम से जाना जाता है। इस काल में भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो चुका था। फलस्वरूप भारतीय संगीत तथा सभ्यता पर अंग्रेजी प्रभाव पड़ा जिससे भारतीय संगीत को गहरी क्षति हुयी। संगीत को व्यावसायिक रूप प्रदान कर जीविकोपार्जन का साधन बनाना पड़ा जिससे संगीत निम्न वर्ग के हाथों तक पहुंच गयी। उसका लक्ष्य मात्र क्षणिक सुख ही रह गया। परन्तु इसी समय कुछ अंग्रेजी विद्वानों द्वारा संगीत की खोई हुयी ख्याति को पुनः जाग्रत करने का प्रयास किया गया। संगीत पर अनेक पुस्तकें लिखी गयी जिसका प्रभाव समाज के सभ्य वर्ग पर पड़ा। संगीत को आदर भाव से देखा जाने लगा। इसी समय कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुयी जिनमें संगीत सार, राग कल्पद्रुम, युनिवर्सल हिस्ट्री

ऑफ म्यूज़िक आदि । इस समय संगीत को पुनः सम्मान जनक स्थान प्राप्त हुआ ।

ख्याल गायकी का प्रचार काफी बढ़ा था । तंत्र वाद्यों के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ । वीणा के स्थान पर सितार का प्रचार हो चुका था और संगत के लिए तबले का प्रवेश हुआ । तंत्र वाद्यों में लखनऊ के "गुलाम रजा खां साहब" ने रजाखानी तथा "मसीत खां" ने मसीतखानी का आविष्कार किया तथा सितार पर उसके वादन का प्रचार किया ।

इसी समय शास्त्रीय संगीत की रक्षा तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए दो महान संगीतकारों ने जन्म लिया पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे तथा विष्णु दिगम्बर पलुष्कर । इन्होंने संगीत के प्रचारार्थ अपने देश के साथ-साथ विदेशों में भी भ्रमण किया और जगह-जगह संगीत प्रशिक्षण के लिए विभिन्न संस्थानों की स्थापना भी की । 1901[1] में पं0 विष्णु दिगम्बर जी ने लाहौर में गान्धर्व

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण ।डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा।, पृ. 129.

महाविद्यालय की स्थापना की ।

प्राचीन समय में संगीत का रूप अव्यवस्थित था किसी भी राग को गायक भिन्न-भिन्न रूप से गाया करते थे । इसी को सरल रीति से गाने के लिए भातखण्डे जी ने अपने अनुभवों के आधार पर सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया, जो आजकल काफी लोकप्रिय है । आपने अनेक संगीत ग्रन्थों की भी रचना की । इन सब का प्रभाव यह हुआ कि आज संगीत घर-घर में व्याप्त हो गया है । सरल स्वरलिपि पद्धति के द्वारा संगीत का ज्ञान सुलभ हो गया है इसी कारण लोगों में संगीत सीखने तथा जानने की इच्छा जाग्रत हो गयी है ।

आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत को पाठ्यक्रम के रूप में लागू किया गया और आज स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक संगीत की शिक्षा दी जा रही है । इसी कारण से भातखण्डे जी ने अनेक विद्यालयों की स्थापना की । इसीके अन्तर्गत 1918[1] में ग्वालियर में

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (डॉ० स्वतन्त्र शर्मा), पृ. 124.

"माधव संगीत महाविधालय" की स्थापना की । 1926[1] में लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कालेज की स्थापना की।

पं० विष्णु दिगम्बर जी ने भी संगीत के प्रचारार्थ में बम्बई में "गान्धर्व महाविधालय" की स्थापना की । इस प्रकार स्वतन्त्र भारतवर्ष में भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रचार तीव्र गति से होने लगा । सरकार के द्वारा भी संगीत के विकास और प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है । संगीत कला को प्रोत्साहन देने हेतु कुशल संगीतज्ञों को राष्ट्रपति पदक प्रदान किये जाने लगे तथा आकाशवाणी केन्द्रों की स्थापना की गई । दूरदर्शन केन्द्रों की स्थापना, विभिन्न संगीत समारोहों के आयोजन द्वारा गायकों वादकों को प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

आधुनिक काल में तानसेन वंश के बहादुर सेन "रबाब", सुरसिंगार व वीणा के अद्वितीय साधक थे । इनके शिष्यों में वजीर खां, इनायत खां (सितार), अली

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (डॉ० स्वतन्त्र शर्मा), पृ. 124.

हुसैन ‡वीणा‡, बुनियाद हुसैन ‡ध्रुपद ख्याल‡, गुलाम नवीं मजरू खां ‡सरोद‡, पन्ना लाल बाजपेयी ‡सितार‡, मुहम्मद हुसैन ‡वीणा‡ आदि प्रथम श्रेणी के संगीत शिल्पी थे। इनके अतिरिक्त अन्य संगीत शिल्पियों में संगीताचार्य क्षोमेन्द्र मोहन गोस्वामी द्वारा रचित "कंठकौमुदी" व संगीत सार प्रमुख है।

बंगाल के लक्ष्मी नारायण बाबा जी अति गुणी गायक कलाकार एवं तबला, पखावज, वीणा, सितार आदि के दक्ष वादक थे।

कलकत्ता के राजा सौरीन्द्र मोहन ठाकुर का बंगाल तथा समग्र भारत में संगीत प्रचार के क्षेत्र में इनका सहयोग अतुलनीय है। विश्वविख्यात उस्ताद अलाउद्दीन खाँ किसी भी वाद्यंत्र को निपुणता से बजा सकते थे वायलिन, सुरबहार, सरोद आदि वाद्यों में अनेक रिकार्डिंग की है।

उस्ताद दबीर खाँ ध्रुपद के प्रसिद्ध गायक एवं अतुलनीय वीणा वादक थे। विश्वविख्यात सितार वादक पं0 रविशंकर का विदेशों में संगीत प्रचार का प्रयास अतुलनीय है।

इन्दौर के सुप्रसिद्ध सितार वादक अब्दुल हलीम जाफर खां ने विदेशों में संगीत का सफर किया । आपको "पद्मश्री" उपाधि से भी सम्मानित किया जा चुका है । बंगाल के निखिल बनर्जी ने भी सितार के क्षेत्र में "पद्मश्री" की उपाधि अर्जित की है ।

विश्वविख्यात सरोद वादक उस्ताद अमजद अली खां जितनी अल्प आयु में ख्याति प्राप्त व्यक्ति शायद ही होगा । इसके अतिरिक्त भी कई संगीतज्ञ आधुनिक काल में भारतीय संगीत की सेवा करने में लगे हुए हैं । एक समय जब संगीत निम्न वर्ग के हाथों में था । संगीत को लोग बुरी नजर से देखते थे । उच्च वर्ग के लोग संगीत से दूर ही रहते थे लेकिन उस भ्रांत धारणा को दूर कर संगीत को आम लोगों तक पहुंचाने का श्रेय बंगाल के राजा सौरेन्द्र मोहन ठाकुर को जाता है ।

इस प्रकार आधुनिक काल में संगीत की स्थिति यह है कि आज गजल भजन, लोक संगीत तथा फिल्मी संगीत की तरह शास्त्रीय संगीत के प्रति भी आम जनता में रूचि जाग्रत हुयी है । आधुनिक काल में जनरूचि को ध्यान में रखते हुए कलाकारों ने संगीत में कुछ परिवर्तन

किया है। गायन के क्षेत्र में तानों पर, तंत्र वाद्यों के क्षेत्र में झालों पर, तथा संगत में सवाल जवाब की संगत पर अधिक जोर देने लगे है। आज संगीत का मुख्य लक्ष्य श्रोताओं को आनन्द प्रदान करना है।

संगीत में वाद्यों का स्थान

संगीतमय ध्वनि तथा गति को जो प्रकट कर सके वही वाद्य है। मानव-जीवन के साथ वाद्यों का घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है। आदि काल से ही मानव किसी न किसी रूप में वाद्यों का निर्माण करता आया है। फलस्वरूप जैसे-जैसे मनुष्य और सुसंस्कृत होता गया वैसे ही वाद्य का भी विकास होता गया। शास्त्रीय संगीत के दो मूल तत्व है स्वर तथा लय। किन्तु संगीत वाद्य इन्हीं स्वर तथा लय के द्वारा गायन तथा नृत्य कला के बिना भी श्रोताओं को असीम आनन्द की अनुभूति कराती है। वाद्य संगीत में इतनी अभिव्यंजना शक्ति होती है जितनी किसी अन्य कला में नही इसी के द्वारा मनुष्य को घन्टों वाद्य संगीत को सुनने तथा उसमें रमाये रखने की शक्ति है। कण्ठ संगीत में काव्य का योग यद्यपि उसे सार्वभौमिक बना देता है किन्तु संगीत की

दृष्टि से उसका स्तर भी गिरा देता है। जब संगीत में शब्दों का महत्व घटता है तब वह शास्त्रीय संगीत और जब शब्दों का महत्व बढ़ता है उसे सरल संगीत कहा जाता है।

वाद्य संगीत में भी यद्यपि शास्त्रीय एवं सरल संगीत जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है किन्तु संगीत के तत्वों की दृष्टि से न उसमें कोई कमी आती है न ही मिलावट होती है। इस प्रकार संगीत में तात्विक दृष्टि से वाद्य की महत्ता सर्वाधिक हो जाती है।

धीरे-धीरे वाद्यों का विकास होता गया और विकास के साथ-साथ उनका प्रयोग विस्तार भी होता गया। संगीत के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी वाद्यों का प्रयोग बढ़ने लगा जैसे युद्ध के समय, पूजा-पाठ के समय, मांगलिक कार्यों में आदि।

महर्षि भरत ने भी कहा है वाद्यों का प्रयोग प्रत्येक शुभ कार्यों में शुभ तथा सफलता सूचक है -

उत्सवे चैव माने च नृपाणां मङ्गलेषु च ।
शुभकल्याणयोगे च बिवाहकरणे तथा ।।

उत्पति संश्रये चैव संग्रामे पुत्र जन्मनि ।
ईदृशेषु हि कार्येषु सर्वातोधानी वादयेत् ।।

स्वाभावगृहवार्तायामल्पभाण्डं प्रयोजयेत ।
उत्थानकार्य ‡व्य‡ बन्धेषु सर्वातोधानि वादयेत ।।

अङ्गाना तु समत्वाच्च छिद्रप्रच्छादने तथा ।
विश्रामहेतोः शोभार्थं भाण्डवाद्यं विनिर्मितम् ।।[1]

इसके अतिरिक्त वाद्यों का प्रयोग विभिन्न स्थानों पर होता है जैसे मन्दिरों में पूजा के समय घण्टा शंख आदि वाद्य युद्ध क्षेत्र में दुन्दुभि, धौंसा आदि वाद्य, विवाहादि मांगलिक कार्यों में शहनाई आदि वाद्यों का जो वादन होता है वह प्रतीक स्वरूप है जिससे व्यक्ति दूर रहकर

---

1 भारतीय संगीत वाद्य ‡डॉ० लालमणि मिश्र‡, पृ. 12.

भी समझा जाता है कि अमुक स्थान पर पूजा हो रही या युद्ध हो रहा है या विवाहादि मांगलिक कार्य हो रहा है। इस प्रकार वाद्य चाहे वह जिस प्रकार का हो, एक विशेष संकेत प्रदान करता है। जो श्रोताओं को उससे सम्बद्ध वास्तुस्थित का स्वतः ज्ञान करा देता है। कलाकार जब वाद्यों का प्रयोग गीत नाट्य, नृत्य नाटिका से सम्बन्धित करता है तब उसमें व्यापक कथानक को ध्यान में रखते हुए उसमें भावपक्ष प्रबल हो जाता है। किन्तु जिस समय कलाकार स्वतन्त्र वादन करता है तो उसके वादन में भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता रहती है। भावाभिव्यक्तिकरण के लिए वाद्य परम्परागत होता है। किन्तु यदि कलाकार चाहे तो ध्वनि की तारता, तीव्रता तथा गुण के द्वारा अपने ढंग से प्रयोग कर सकता है। नाद की इन तीनों विशेषताओं तथा लय लयकारी द्वारा भी भावों को अपने ढंग से नया मोड़ दे सकता है जैसे - मालकोंश गम्भीर प्रकृति का राग है इसके द्वारा वीर, ओजपूर्ण, शौर्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर होती है किन्तु यदि ध्वनि में तीव्रता न हो, स्वरों की लय विलम्बित हो तो करुण भावों की अभिव्यक्ति होगी।

वाद्य संगीत में अपनी अभिव्यक्ति में अन्य किसी कला की अपेक्षा नहीं रखता। जबकि गायन के लिए कम से कम तबला तथा तम्बूरा तो होना ही चाहिए। इसी प्रकार नृत्य के साथ वाद्यों का होना नितान्त आवश्यक है। नृत्य तथा कण्ठ संगीत के साथ-साथ नाटकों में भी संगीत वाद्यों का होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके बिना नाटक निर्जीव सा प्रतीत होता है। इस प्रकार संगीत क्षेत्र में वाद्यों का विशेष महत्व है।

Note आज वृन्द वादन का फिर से विकास हो रहा है इस वृन्द वादन के साथ वाद्यों द्वारा उद्भूत विभिन्न भावों की अभिव्यक्तिकरण के नये-नये प्रयोग भी हो रहे हैं। इस प्रकार भविष्य में संगीत वाद्यों द्वारा अभि-व्यक्तिकरण की और नई दिशाओं का जन्म होगा जो समस्त संसार में भारतीय संगीत की अभूतपूर्व उपलब्धि होगी।

शास्त्रीय संगीत की विवेचना में भारतीय संगीत वाद्यों का सहयोग महत्वपूर्ण रहा है। वाद्यों के बिना शास्त्रीय संगीत का कोई अस्तित्व नहीं है। स्वरोत्पत्ति स्वर स्थान का स्थिरीकरण, स्वरान्तरालों की नाप-जोख आदि कार्य बिना वाद्यों के पूरे हो ही नही सकते।

इसके लिए प्राचीन काल से लेकर अब तक वाद्यों का ही सहारा लेना पड़ता है। महर्षि भरत ने भी श्रुतियों के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक समान बनी दो वीणाओं का सहारा लिया था।

ग्राम, मूर्च्छना, जातियों आदि को समझने के लिए वाद्यों का प्रयोग ही सर्वोत्तम है। संगीत मूलतत्व को समझने की दृष्टि से, स्वतंत्र वादन की दृष्टि से, अन्य कलाओं में सहयोग प्रदान करने की दृष्टि से, विभिन्न अवसरों पर प्रयोग की दृष्टि से प्रतीकात्मक दृष्टि, स्वरों के विश्लेषणात्मक कार्यों की दृष्टि से, वाद्य कला जितनी अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक है उतनी अन्य कोई कला नही है।

वर्गीकरण

आज हमारे जीवन में चारों ओर संगीत वाद्य फैले हुए हैं। ये वाद्य किसी न किसी रूप में जीवन से जुड़े हैं। संगीत वाद्य हमारी मानसिक भावनाओं को वहन करने में पूरी तरह सक्षम रहे है। इन्ही वाद्यों द्वारा हम अपनी भावनाओं को दूसरों तक तथा दूसरों की

भावनाओं को स्वयं समझने में सक्षम होते है।

"अनाहत" और "आहत" नाद के ये दो भेद है। "आहत नाद" जिसको सुन सकते है तथा व्यवहार में ला सकते है, अपने पाँच ध्वनि रूपों अर्थात् संगीतरूपी ध्वनि के रूप में दिखाई देता है –

अनाहतः आहतश्चेति द्विविधो नादस्तत्र
सोऽप्याहतः पञ्चविधो नादस्तु परिकीर्तितः।
नखवायुजः चमार्णि [चर्मण्य] लौहशारीरजास्तथा।।[1]

ये संगीतात्मक ध्वनियां नखज, वायुज, चर्मज, लोहज, तथा शरीरज होती है। जिसमें वीणा आदि वाद्य नखज है, वंशी आदि वाद्य वायुज हैं, मृदंग आदि वाद्य चर्मज है, ताल मंजीरा आदि लोहज है, तथा कण्ठ ध्वनि शरीरज है इन पाँच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले

---

1 भारतीय संगीत वाद्य [डॉ0 लालमणि मिश्र], पृ. 13.

वाद्यों को "पंचमहावाद्यानि" कहा गया है ।

जैसा कि संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने वाले उपकरण को वाद्य कहा गया है । इस दृष्टि से तो मानव कण्ठ को भी वाद्य कहा जा सकता है किन्तु मनीषियों ने मनुष्य द्वारा निर्मित वाद्यों को ही वाद्य की श्रेणी में रखा है, तथा कण्ठ को ईश्वर निर्मित बताया है जो नैसर्गिक है । अतएव इसे वाद्यों की श्रेणी में नही रखा जा सकता है ।

"एकं ईश्वर निर्मित नैसर्गिक अन्यच्चतुर्विधं ।
मनुष्यनिर्मित चेति पञ्चप्रकारा महावाद्यानाम्।।"[1]

वाद्यों के विषय में ग्रन्थकारों में मतएकता नही रही है अर्थात् किसी तीन माना किसी ने चार माना तथा किसी ने इसकी संख्या पांच मानी है । जिनमें से इसकी संख्या पांच मानने वालों में "कोहल" का नाम आता है

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लालमणि मिश्र), पृ. 13.

इनके मतानुसार वाद्य पांच ही हैं -

> प>-चधा च चतुर्धा च त्रिविधं च मतेमते ।
> कोहलष्य मते ख्यालं प चधा वाद्यमेव च ।।[1]

इसके अतिरिक्त नारद ने तीन ही ध्वनियां मानी है - आनद्ध, तत् एवं घन । नारद ने अपने वर्गीकरण में सुषिर वाद्य को अलग से स्वीकार नही किया है ।

> नारदमते चर्माणं तान्त्रिकं धनं
> चेति त्रिधा वाद्य लक्षणम् ।[2]

इसके अतिरिक्त संगीतशास्त्र के कुछ ग्रन्थकारों ने ध्वनियों की संख्या चार मानी है वाद्यों के चार वर्ग मानने वालों में महर्षि भरत और दत्तिल है इनके अनुसार तत्,

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला ‡ डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ ‡, पृ. 31.

2 भारतीय संगीत वाद्य ‡डॉ0 लालमणि मिश्र‡, पृ. 13.

आनद्ध, घन और सुषिर है।

> ﴾क﴿ भरतेन वाद्यं चतुर्विधं प्रोक्तं।
> ﴾ख﴿ दत्तिलेन तु आनद्धं ततं घनं सुषिरं चेति
> चतुर्विधं वाद्य कीर्तितम् ।।[1]

इस प्रकार समस्त प्रकारों को देखते हुए आचार्य भरत का वर्गीकरण ही सर्वाधिक उचित एवं मान्य सिद्ध हुआ है। भारतीय शास्त्रों में प्राचीन काल से ही वाद्यों के यही वर्ग मुख्य रूप से माने गये है - तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर। इनमें से तत् एवं सुषिर मुख्यतः स्वर वाद्य है तथा घन एवं अवनद्ध को लय वाद्य कहा है। स्वर के मूल में लय तथा लय के मूल में स्वर स्थिर है अतएव व्यवहारिक दृष्टि से देखने में भिन्न होने पर भी यह चारों वर्ग मूलतः एक ही है।

वाद्य ध्वनियों के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थकारों के

---

1 भारतीय संगीत वाद्य ﴾डॉ० लालमणि मिश्र﴿, पृ. 13.

भिन्न भिन्न विचार रहे हैं अर्थात् किसी ने वाद्यों की पांच ध्वनियां किसी ने चार तथा किसी ने तीन ही मानी है। उपनिषदों और पुराणों में कहीं कही अनेक ध्वनियां मानी हैं, किन्तु उनका उद्देश्य वाद्यों का वर्गीकरण नही हो सकता है जैसे हंसोपनिषद में दस प्रकार के नादो का वर्णन किया गया है -

स एव जपकोटया नादमनु भवति एवं
सर्व हंस वशान्नादौ दशविधो जायते।
चिणीति प्रथमः। चिञ्चिणीति द्वितीयः।
घण्टानादस्तृतीय :। शंखनादश्चतुर्थ :।
पञ्चमस्तन्त्रीनादः। षष्ठस्तलनादः।
सप्तमोवेणुनादः। अष्टमोमृदङ्गनादः।
नवमो भेरीनादः। दशमोमेघनाद :।[1]

ये सभी नादभेद ध्यान से देखने पर नाद वाद्यों के

---

1 भारतीय संगीत वाद्य ‡डॉ० लालमणि मिश्र‡, पृ. 13.

चतुर्विध वर्गीकरण में समाविष्ट मिलते है। अतएव इस प्रकार के नादों की संख्या वृद्धि, वाद्य वर्गीकरण के लिए कोई समस्या नही है।

इस प्रकार समस्त प्रकारों को देखते हुए आचार्य भरत का चतुर्विध वाद्यों का वर्गीकरण ही उचित माना गया है। उन्होंने लिखा है -

ततं चैवानद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्य लक्षणान्वितम् ।। [1]

इन चार प्रकार के वाद्यों का लक्षण उन्होंने निम्नलिखित कारिका में स्पष्ट किया है -

तंत तंत्रीकृतं ज्ञेयभवनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते ।। [2]

---

1 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 32.

2 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 32.

अर्थात् तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर से तात्पर्य है क्रमशः तन्त्री वाद्य, पुष्कर वाद्य, तल वाद्य तथा वंशी वाद्य है।

संगीत का सम्बन्ध धर्म से जुड़े होने के कारण इन चतुर्विध वाद्यों तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर का भी सम्बन्ध देवताओं से अवश्य रहा होगा, इन वाद्यों के सम्बन्ध में कहा भी गया है -

ततं वाद्यतुं देवानां गन्धर्वाणां च शौषिरम् ।
आनद्धं राक्षासांनातु किन्नराणां घनं विदुः ।
निजावतारे गोविन्दः सर्वमोवानयत् क्षितौ ।।[1]

अर्थात् तत वाद्य देवताओं से, सुषिर गन्धर्वों से आनद्ध राक्षसों से तथा घन किन्नरों से सम्बन्धित है। भरत के समय में समस्त वाद्य यन्त्रों को "आतोद्य" कहा जाता था। महर्षि वाल्मीकि तथा महाकवि कालीदास तथा

---

1 निबन्ध संगीत (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 154.

महाभारत में भी अनेक वाद्यों के साथ बजने सन्दर्भ में "तूर्य" शब्द का उल्लेख किया गया है। पाली साहित्य में "तुरिय" शब्द "वृन्द वादन" का द्योतक माना गया है। विमानवत्थु[1] में तुरिय पंचाग्मिक के अन्तर्गत पांच प्रकार के वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिन्हें आतत्, वितत्, आतत वितत्, घन तथा सुषिर कहा गया है।

जब से वाद्यों का वर्गीकरण हुआ है उसमें समय-समय पर कुछ परिवर्तन भी बीच में हुए है "वितत" शब्द का प्रयोग जो "अवनद्ध" के स्थान पर हुआ है और दूसरा है "ततानद्ध" नाम का नया वर्गीकरण। तानसेन के समय से ही "वितत" शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ था उनके अनुसार वाद्यों के वर्गीकरण इस प्रकार था - तत् वितत्, घन तथा सुषिर। इसी का प्रयोग उन्होंने कई स्थानों पर भी किया है जैसे -

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लालमणि मिश्र), पृ. 13.

तत को पहिले कहत है वितत दूसरो जान ।
तीजो घन चौथे सिखर तानसेन परमान ।।

तार लगे सम साज के सो तत ही तुम मान ।
चरम मढ़्यो जाको मुखर वितत सु कहे बखान ।।

कंस ताल के आदि दै घन जिय जानहुमीत ।
तानसेन संगीत रस बाजत सिखर पुनीत ।।[1]

इस प्रकार देखने से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन कालीन अवनद्ध, आनद्ध या नद्ध वाद्य का कहीं प्रयोग न करके तानसेन ने केवल "वितत" शब्द का ही प्रयोग किया है । विमानवत्थु तुरिय (वृन्द वादन) के अन्तर्गत पांच प्रकार के वाद्य वर्गीकरण का नामोल्लेख किया है उसमें तत को आतत तथा अवनद्ध को वितत कहा गया है । इस प्रकार पता चलता है कि "वितत" शब्द पाली से आता है ।

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लालमणि मिश्र), पृ. 14.

जब मध्ययुग में हिन्दी और उर्दू भाषा अलग अलग हो गयी। उसी समय से "वितत" शब्द के स्थान पर अवनद्ध शब्द प्रचार में बढ़ गया।

इस वर्गीकरण के अतिरिक्त भी कुछ वाद्य ऐसे भारत में मौजूद है जिनको प्रचलित चतुर्विध वाद्यों में नही रख सकते हैं जिनमें प्राचीन कालीन वाद्य "उपंग" आता है। क्योंकि इस प्रकार के वाद्य यंत्रों मे चमड़ा भी प्रयोग होता है तथा तार भी प्रयुक्त होता है। यह ताल वाद्य है। इसी प्रकार प्रायः गज से बजने वाले सारंगी, रावणहत्था, इसराज आदि ऐसे वाद्य है जिनमें चमड़ा तो प्रयुक्त होता है किन्तु ये तन्त्री वाद्य स्वर वाद्य है। इनकी प्रकृति से इनमें कोई अंतर नही पड़ता है। किन्तु "उपंग" में ध्वनि उत्पादन चमड़े के स्थान पर तन्त्रियों से किया जाता है और वह तंत्री स्वर की अपेक्षा लय तथा ताल को व्यक्त करती है। यह लक्षण अवनद्ध में नही आता है। इस प्रकार के वाद्यों का उल्लेख महाकवि "बाण" के "हर्षचरित" में आया है। उसमें उसे "तन्त्रिपटहिका" कहा जाता है। इस प्रकार इस वाद्य में तत और अवनद्ध दोनों लक्षणों के होने के कारण दोनों नाम को जोड़कर विमानवत्थु में नया वर्ग

बताया गया है तथा इसके पश्चात् "सगीत पाठ"[1] नामक ग्रन्थ में इस प्रकार का वर्गीकरण मिलता है। इसके तत्, आनद्ध, ततानद्ध, घन तथा सुषिर ये पांच वर्ग वाद्यों के माने गये हैं।

इन वाद्यों के अतिरिक्त और भी कई भारतीय वाद्य हैं जो इन वर्गीकरण के अन्तर्गत नही आ पाते है और प्रचार में भी है। इसी तरह के वाद्यों में मध्यकाल में विकसित "जलतरंग" वाद्य आता है वैसे तो "संगीत पारिजात" में इसे घन वाद्य के अन्तर्गत रखा गया है। ताल और लय का प्रदर्शन होता है किन्तु जलतरंग का प्रयोग स्वर वाद्यों की तरह गत एवं गीत वादन के लिए होता है। इस दृष्टि से यह घन वर्ग के अन्तर्गत नही आयेगा। धीरे-धीरे कुछ और वाद्य आये जैसे काष्ठ तरंग, घुंघरू तरंग, घण्टा तरंग, शीशा तरंग, जल तरंग, तबला तरंग तथा मृदंग तरंग आदि। ये सभी वाद्य घन तथा अवनद्ध वाद्यों से मूल ढांचा लेकर

----

1 भारतीय संगीत वाद्य ।डॉ0 लालमणि मिश्र।, पृ. 15.

स्वरोत्पत्ति के निमित्त प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार ये रूप तथा प्रकृति में अपने मूल रूप से भिन्न हो जाते हैं। इस कारण इन वाद्यों का एक नया वर्ग "तरंग वाद्य" बन गया।

वे घन अथवा अवनद्ध वाद्य जो अपने छोटे-छोटे आकार के कारण भिन्न स्वरों द्वारा रागोत्पत्ति कर सकें, तरंग वाद्य कहलाते है इन का वादन प्रहार द्वारा होता है जो हाथ से अथवा किसी डण्डी से हो सकता है। इस प्रकार यह नवीन वर्ग जुड़कर वाद्यों के ६ वर्ग हो जाते हैं। यथा - तत, आनद्ध, ततानद्ध, घन, सुषिर तथा तरंग वाद्य।

तंत्र वाद्य

संगीतसम्बन्धी ध्वनि तथा लय को प्रकट करने वाले उपकरण "वाद्य" कहलाते हैं। जब मनुष्य ने गानकला में स्थिरता लाने के लिए राग और ताल की रचना की उस समय भाषा की लिपि के समान वाद्ययंत्र स्वर और समय की सीमा बांधने के लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। संगीत के अन्तर्गत वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा

है । प्राचीन समय में जब वाद्यों का आविष्कार किया गया होगा उसी समय कला मर्मज्ञों ने वाद्यों में तरह-तरह से परिवर्तन करके स्वर उत्पन्न किये होंगे और उसी समय से वाद्यों में विभिन्न परिवर्तन होते रहे हैं उन्हीं के विकसित रूप में आजकल के प्रचलित वाद्य है । सम्भवतः प्राचीन काल में प्रकृति से उत्पन्न प्राकृतिक ध्वनियां ही संगीत का रूप लेती थीं । इसी आधार पर मृगया तथा युद्ध के समय पर धनुष की प्रत्यंचा से उद्भूत होने वाली टंकार को सुनकर मानव ने तंतु वाद्य की परिकल्पना की होगी ।

कल्लिनाथ के मतानुसार दक्षयज्ञविध्वंस से शिव को जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसके शांत करने के लिए स्वाति और नारद आदि ने वाद्यों का निर्माण किया

> वाद्यं दक्षाध्वरध्वंसोद्रेगत्यागाय शंभुना ।
> चक्रे कौतुकोऽ नदिस्वाति तुंबरू नारदैः ।।[1]

---

1 निबंध संगीत (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 155.

जैसा कि गायन वादन तथा नृत्य इन तीनों के योग को ही संगीत कहा गया है। इस दृष्टि से यदि वाद्य हमारे जीवन में न होते तो संगीत का कोई अस्तित्व न रह जाता क्योंकि गायन वाद्य पर ही निर्भर है।

प्राचीन काल से ही वाद्यों की उत्पत्ति का सम्बन्ध किसी न किसी देवी, देवता से जोड़ा जाता रहा है। इसी सम्बन्ध में वीणा का निर्माण भगवान शिव ने पार्वती की शयनमुद्रा को देखकर उसी के आधार पर किया होगा फलस्वरूप इसका नाम रूद्र वीणा रखा।

गायन वादन आदि में भिन्न-भिन्न उपकरणों का प्रयोग होता है। इन उपकरणों को जो संगीत में प्रयुक्त होते हैं दो भागों में विभक्त हैं। एक बाह्य दूसरा अभ्यन्तर। बाह्य उपकरण विशेषतः वाद्य संगीत में दिखाई देता है तथा अभ्यन्तर कण्ठ संगीत में दिखाई देता है।

भारत की प्राचीन संगीत कला में प्रयुक्त होने वाले वाद्य अपने विकास के चरणों सहित आज भी अपनी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। भारतवर्ष में देश-

काल की परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रकार के वाद्यों की रचना निरन्तर होती रही है। जब हम किसी वस्तु में हाथ, डंका या पवन के संयोग से स्वर उत्पन्न करते हैं तो उसे वाद्य या बाजा का नाम देते हैं। उसमें भी कुछ तो "स्वर वाद्य" होते है तथा कुछ "लय वाद्य" होते हैं। वे वाद्य जो स्वर उत्पन्न करते हैं स्वर वाद्य कहलाते है तथा जो समय का निर्देश करते हैं वे "ताल वाद्य" कहलाते हैं। इस प्रकार किसी भी श्रेणी का वाद्ययंत्र हो उसका संगीत जगत् में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

तंत्र वाद्य की विशेषता

संगीत वाद्यों का हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है अतएव वाद्य हमारे जीवन के चारों ओर फैले हुए हैं। ये हमारी भावनाओं को हमारी चित्त वृत्तियों को पूरी तरह वहन करने में सक्षम हैं। वाद्य में ये विशेषता होती है कि हमारे भावों को दूसरे तक ले जाते हैं। प्राचीन काल में एकतार पर केवल एक ही स्वर की व्यवस्था रहती थी किन्तु "भरत

नाट्य शास्त्र" के काल से कुछ वर्ष पूर्व वीणाओं में स्वरोत्पत्ति का नवीन विधान हुआ इसमें वादक एक ही तार पर बायें हाथ में बारह अंगुल लम्बी लकड़ी अथवा बाँस की गोल शलाका पकड़कर उसे तार पर रगड़कर भिन्न-भिन्न स्वर निकालता था। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्वरों की उत्पत्ति के लिए तार बदलना आवश्यक नहीं था अपितु यदि एक तार को हम कठोर वस्तु के स्पर्श से छोड़ा तो एक ही खिंचाव के रहते हुए उस में स्वरों की भिन्नता उत्पन्न की जा सकती है। वाद्य में स्वरों के सही स्थान को प्राप्त करने के लिए कलाकार के सूक्ष्म स्वर ज्ञान के साथ-साथ कठोर साधना की भी अत्यन्त आवश्यकता होती थी। इसी लिए वादक की सुविधा एवं सरलता के लिए वीणा के दण्ड पर स्वर स्थानों को स्थापित कर देने की प्रथा का सूत्रपात लगभग मतंग के समय में प्रारम्भ हुआ। इस नये विधान से जो वीणा बनी उसे किन्नरी नाम दिया गया।

समय के साथ-साथ वाद्यों में परिवर्तन होता रहा। त्रितंत्री वीणा में परदों की व्यवस्था हुई। तारों की व्यवस्था में परिवर्तन हुआ जिसके कारण सितार सुर बहार

आदि में तारों की व्यवस्था में मुख्य वादन तंत्री दक्षिण पार्श्व में आ गयी और चिकारी उसका मुख्य घुड़च के वाम पार्श्व में आ गये इस परिवर्तन के कारण ही सितार ऐसे तंत्र वाद्यों में तोड़ो, झाले की तैयारी को केवल एक उंगली से उस स्तर तक पहुंचाना सम्भव हो सका जो पहले तीन चार उंगलियों के प्रयोग से भी सम्भव न हो सका था। पहले आलाप का काम सुर बहार में तथा तैयारी का आनन्द सितार में लिया जाता था, किन्तु धीरे-धीरे सितार में आलापचारी की दिशा में विकसित कर लिया गया है और अब आलापचारी तथा तैयारी के लिए एक ही वाद्य सितार पर्याप्त है। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर अब तक कला मर्मज्ञों ने वाद्यों में विभिन्न परिवर्तन करके स्वर उत्पत्ति किया। वाद्यों में इसी तरह परिवर्तन होते-होते उसके विकसित रूप आज कल के प्रचलित वाद्य है।

आधुनिक काल में सरोद, सितार आदि में चार सप्तकों को अच्छे कलाकार प्रयोग कर लेते है इनमें आदि और अन्त के स्वरों में मींड़ का सहारा लेना पड़ता है। सप्तक के स्वरों की वृद्धि तारता की दृष्टि से भारतीय वाद्यों में प्रगति का संकेत है। तारता के गुण के साथ-साथ तीव्रता का गुण भी सरोद, सन्तूर आदि तत

वाद्यों कही अधिक है। वाद्य संगीत में स्वर एवं लय के माध्यम से बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को चिरकाल तक आनन्दानुभूति में रमाये रखने की अद्भुत शक्ति है। वाद्यों का विकास जैसे-जैसे होता गया वैसे-वैसे उनका विभिन्न अवसरों सामाजिक अथवा युद्धादि पर प्रयोग भी बढ़ने लगा था। वाद्यों का रूप गायन कला को ही शोभित करने वाला न था, उसने मूर्तिकला, चित्रकला में भी यथेष्ट योग दिया। आज भी विभिन्न मूर्तियों और चित्र में विभिन्न वाद्यों के चित्र नजर आते हैं। गायन संगीत में शब्दों का महत्व संगीत की तुलना में अधिक होता है। सुगम संगीत में काव्य की प्रमुखता हो जाती है तथा शब्द गौण हो जाते हैं। परन्तु वाद्य संगीत में संगीत की यह गौणता नही होने पाती है आज संगीत क्षेत्र में वाद्य संगीत का स्वतंत्र अस्तित्व आया है।

गायन तथा नृत्य कला की सन्तुष्टिमय अभिव्यक्ति के लिए वाद्य संगीत का होना अत्यन्त आवश्यक है। वाद्य संगीत में यह विशेषता होती है कि उसे किसी अन्य कला की आवश्यकता नही होती है। तंत्र वाद्यों का वादन क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें सातों स्वर,

बाइस श्रुतियां, इक्कीस मूर्च्छना, तान और अलंकार आदि सभी प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार संगीत सम्बन्धी किसी भी विश्लेषण के लिए वाद्यों का होना आवश्यक माना है।

अध्याय 2

स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय संगीत की स्थिति का अध्ययन

स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय संगीत और उसमें वाद्यों की स्थिति का जब हम अध्ययन करते है तो एक बात स्पष्ट होती है कि आज से 60 - 70 वर्ष पूर्व वाद्यों को इतनी स्वतंत्रता प्राप्त नही थी कुछ ही वाद्य स्वतंत्र वादन के लिए प्रयुक्त किये जाते थे और कुछ तो केवल संगत के लिए। राज दरबारों में यद्यपि वाद्य के कलाकारों को भी मान्यता थी तथापि मुख्य रूप से गायक कलाकारों को महत्व दिया जाता था। उसी समय कई ऐसे महान संगीतज्ञ भी हुए जिन्होंने संगीत और मुख्य रूप से वाद्यों की स्थिति को प्रतिष्ठित स्थान दिलाने में भरपूर योगदान दिया इतना ही नही

भारतीय संगीत वाद्यों के प्रचार - प्रसार में आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लेकिन इन वैज्ञानिक साधनों से पूर्व स्वतंत्रता से पूर्वकाल में संगीत को प्रतिष्ठापूर्ण स्थान पर लाने तथा उसका प्रचार - प्रसार करने में कुछ महान विभूतियों का योगदान रहा है। आज संगीत वाद्यों का जो विकसित रूप है इन्हीं की देन है। प्राचीनकाल से ही संगीत वाद्यों में कुछ न कुछ परिवर्तन होता आया है। संगीत वाद्यों को जन-सुलभ तथा जनप्रिय बनाने में कुछ ख्याति प्राप्त कलाकारों का महान योगदान रहा है। आज जो संगीत का तथा उसमें प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का विकसित रूप हम देख रहे है वो इन्ही महान विभूतियों के अथक प्रयास का फल रहा है।

भरत काल (5 वीं शताब्दी) के बाद सातवी शताब्दी के काल तक मतंग ने वीणा पर सारिकाओं की सुस्पष्ट स्थापना की। सातवी शताब्दी में दत्तिल, बारहवीं शताब्दी में लोचन तेरहवीं शताब्दी में शार्ङ्गदेव तत्पश्चात रामामात्य, सोमनाथ, दामोदर, पुण्डरीक, आभोला आदि ने संगीत की परम्परा को

समृद्ध किया । वैदिक एवं रामायणकालीन संगीत को विहङ्गावलोकन करने से ही प्रतीत होता है । आज से हजारों वर्ष पूर्व भी भारतीय संगीत कितना परिष्कृत वैज्ञानिक तथा समृद्ध था । वाद्यों का स्वरूप तथा वादन कितना निखर चुका था । किसी वाद्य को सुलझा एवं विकसित रूप लेने के पूर्व, आदिमकाल से सहस्रों वर्षों की यात्रा पूरी करनी पड़ती है । कालगति के साथ शनैः शनैः परिवर्तन की हजारों वर्ष प्राचीन प्रक्रिया के उपरान्त वाद्य विकसित रूप ले पाता है इस पृष्ठभूमि में भारतीय संगीत तथा वाद्यों की हजारों वर्ष प्राचीन समृद्ध परम्परा का अनुमान किया जा सकता है । भारतीय संगीत को प्राचीनतम कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा ।

वैदिक युग

वैदिक काल तो संगीत का सर्वांगीण विकास हुआ था । समस्त वातावरण संगीतमय था । मानव सभ्यता के साथ इस धरती पर अवतरित इस संगीत कला का विकास इस काल में ही प्रारम्भ हो चुका था ।

वैदिक युग ही भारत के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से प्राचीनतम युग रहा है। आर्यों का आगमन भी वैदिक युग के प्रारम्भ में ही होता है। आर्यों को संगीत विशेष प्रिय था। अतएव वैदिक काल संगीत का उत्कृष्ट काल था और संगीत का सर्वांगीण विकास हो रहा था। शास्त्रीय तथा लोक संगीत दोनों रूपों में संगीत का विकास हो रहा था। वैदिक काल वह दीर्घसमयावधि है जिसमें चारों वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद की रचना तथा उनके विविध अंगों का विस्तार हुआ। आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रादुर्भाव भी वैदिक कालीन साम-गान से ही माना गया है। ब्राम्हण ही संगीत की शिक्षा सर्वसाधारण को दिया करते थे। इस काल में गायन, वादन, नृत्य तीनों कलाओं का विकास हो गया था। साथ ही साथ वीणा वाद्य के विविध प्रकारों का विकास भी हो गया था।

डा0 परांजपे ने लिखा है ऋग्वेद काल में गायन के साथ ही वाद्य का निरन्तर साहचर्य रहा है। वैदिक काल में संगीत कला तथा संगीतशास्त्र विकास

के सर्वोच्च धरातल पर प्रतिष्ठित थे। साथ ही संगीत के आन्तरिक तथा बाह्य सौन्दर्य दोनों अंगों का विकास हुआ। आध्यात्मिक, सामाजिक और कलात्मक सभी दृष्टियों से संगीत की उन्नति उस काल में हुयी थी। क्योंकि उस काल में सभी वर्ग के लोगों का रूझान संगीत की ओर था। आर्यों ने संगीत में पवित्रता लाने के लिए उसे धर्म के आवरण में लपेट दिया था। इस प्रकार मनुष्य का सामाजिक परिवेश ही संगीतमय हो गया था।

इतिहास के प्रायः हर काल में भारतीय संगीत की स्थिति अच्छी कही जा सकती है। जिसमें राज-दरबारों में संगीत को अच्छा स्थान प्राप्त था। चाहे रामायण काल हो अथवा महाभारत काल हो संगीत मुख्य रूप से धर्म और अध्यात्म से जुड़ा कहा जा सकता है।

16 वीं शताब्दी का काल भक्ति आन्दोलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। इसी काल में बहुत से भक्त कवियों का आगमन हुआ और निर्गुण संत भक्ति कृष्ण भक्ति, राम भक्ति की ओर कवियों का ध्यान गया। इन भक्त कवियों का संगीत के उत्थान और प्रचार महत्वपूर्ण योगदान रहा। भक्ति कालीन कवियों का जिस युग में मुख्य योगदान रहा है उसे मध्यकाल या भक्तियुग के नाम से भी जाना जाता है। इसी कारण इस युग के संगीत में धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शास्त्रीय संगीत में भी धर्म की प्रधानता रही। संगीत की दृष्टि से भक्ति युग का काल स्वर्णयुग कहा जाता है। इस युग में जिन महान भक्त कवियों ने अपना योगदान दिया है, उनमें कुछ का विवरण दिया जा रहा है।

कबीर

मध्यकालीन भक्त कवियों ने संगीत को सर्वोच्च स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिनमें महान कवि संगीतज्ञ कबीरदास जी का नाम आता है। महान समाज सुधारक और सन्त कबीर का जन्म काशी के निकट संवत् 1455 में हुआ था। संगीत की अभि-वृद्धि के लिये प्रबल प्रयास किया था कबीर ने जो आज भी परिलक्षित होता है। कबीर दास जी वैसे तो पढ़े लिखे नही थे। इनके गुरू स्वामी रामानन्द जी थे। कबीर एक मस्त फकीर थे और ये इकतारे पर गाया करते थे। कबीर भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा के सर्वोच्च कवि थे। ये भावुक हृदय वाले व्यक्ति थे। कबीर बाह्य आडम्बरों के विरोधी, मानवता के पुजारी परस्पर प्रेम तथा विश्वास के प्रचारक थे। उनके मत से नीरस ज्ञान प्रेम, विश्वास तथा श्रद्धा के अभाव में निरर्थक हैं। अटल विश्वास, श्रद्धा-युक्त प्रेम ही इनके अनुसार ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन है।

इनके संग्रहों की संख्या 79 कही जाती है इसमें "बीजक" सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। इसके तीन भाग है - रमैनी, शबद और साखी। इनमें वेदान्त तत्व, हिन्दू मुसलमानों की फटकार, संसार की अनित्यता, बाह्य आडम्बरों का विरोध आदि अनेक प्रसंग है। इनकी कविता में ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय मिलता है। यद्यपि कबीर ने रस, अलंकार की दृष्टि से कविता नही लिखी है, फिर भी स्वाभाविक रूप से इनकी कविता में रसात्मकता विद्यमान है।

कबीर दास जी ने संगीत के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मुस्लिम काल में मानव-जीवन से संगीत का प्रभाव खत्म हो रहा था। लोगों में संगीत के प्रति लगाव कम हो रहा था उस प्रभाव को कबीर जी ने अपनी गीत रचनाओं के द्वारा खत्म किया और जनमानस में संगीत का संचार किया। भारतीय संगीत के क्षेत्र में उनकी कीर्ति कौमुदी आज की विद्यमान है। वैदिक काल में जिस तरह संगीत का सर्वोन्मुखी विकास हुआ था उसी प्रकार इन भक्त कवियों

के काल में संगीत पुनः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। समाज में संगीत को सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाने लगा था।

अपने पदों की रचना करके उसमें जीवन के विभिन्न नैतिक मूल्यों को तथा आदर्शों को संगीतमय ढंग से जनमानस में प्रचारित एवं प्रसारित किया। जो उनके साहित्य ज्ञान के साथ-साथ संगीत ज्ञान को दर्शाता है। कबीर दास जी के कई पदों में जीवन के जिन उच्चस्तरीय दर्शन का बोध होता है उससे उनके संगीत-मय ज्ञान का भी बोध होता है जैसे -

"झीनी रे झीनी बीनी चदरिया" तथा "कौने ठगवा नगरिया लूटल है" इत्यादि विशेष उल्लेखनीय है।

सूरदास

भक्ति काल की सगुण कृष्ण काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास का जन्म सम्वत् 1535 वि0 में रुनकता नामक ग्राम में हुआ था। सूरदास जी भगवान कृष्ण के भक्त थे तथा आप महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के शिष्य थे रस, श्रृंगार और वात्सल्य के सम्राट कवि की मृत्यु मथुरा के निकट "पारसोली" नामक ग्राम में सम्वत् 1640 वि0 में हो गयी थी।

सूरदास संगीत के एक श्रेष्ठ कवि तथा संगीतज्ञ थे। ये कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वोच्च कवियों में से एक हैं, अतः उनके काव्य में कृष्ण की भक्ति के साथ-साथ कृष्ण के लोक मान्य रूप का मनोहर चित्रण देखने को मिलता है। इन्होंने अपनी कृतियों में भाव पक्ष और कला पक्ष का अद्भुत समन्वय हुआ है। वे सखा की भाँति कृष्ण के अंतरंग जीवन की मधुर झाँकी अपने पदों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं जो इस पंक्ति के द्वारा समझा जा सकता है " मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै" और "सब तजि भजिए नन्द कुमार "।

सूरदास जी ने बाल-लीला के वर्णन में कृष्ण के बाल सुलभ भावों और चेष्टाओं का सुन्दर, सरल और सजीव चित्र उपस्थित किया है ।

सूरदास के द्वारा लिखे ग्रन्थों की संख्या निश्चित कर पाना कठिन है । कोई इनकी संख्या उन्नीस कोई सोलह कोई सात और कोई पॉच बताता किन्तु मुख्य रूप से इनकी रचनाओं में सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी ही प्राप्त हुई है । जिनमें से "सूर-सागर" में कृष्ण-लीला, गोपी-प्रेम, मथुरा गमन, गोपी विरह, उद्धव गोपी संवाद आदि का वर्णन है । "सूर सागर" का संक्षिप्त संस्करण सूरसारावली है। "साहित्य लहिरी" कवि के दृष्टकूट पदों का संग्रह है । सूरदास की रचनाओं में वात्सल्य, श्रृंगार और शान्त रस अपने उत्कृष्ट रूप में पाये जाते हैं । बाल लीला के वर्णन में वात्सल्य, गोपी-प्रेम में श्रृंगार और विनय के पदों में शान्त रस के दर्शन होते है । सूरदास जी का सम्पूर्ण काव्य गेय पदों के रूप में है ।

सूरदास संगीत के एक श्रेष्ठ कवि तथा संगीतज्ञ थे

ये अकबर के काल में थे। इनके संगीत से स्वयं अकबर भी बहुत प्रभावित हुए थे। सम्राट अकबर अपना एक भजन "मना रे करिमाधौं सौ प्रीत"[1] सुनाकर ही अपने संगीत से उनको चकित किया था। सूरदास के संगीत की विलक्षण प्रतिभा जन्म से ही मिली थी। इन्होंने संगीत के सभी पक्षों को अपनाया। इनके काल में संगीत के विविध रूपों का प्रचार था। ध्रुपद और ख्याल दोनों का प्रचार किया था। इन्होंने भगवान कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित पदों का प्रयोग अपने ख्याल में किया था। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ "सूरसागर" में 87 राग-रागनियों का प्रयोग मिलता है। इन्होंने अपने संगीतमय काव्य में सभी वाद्यों का प्रयोग किया जिनमें - पंचशब्द, रूंज, मुरज, झफताल, बांसुरी, झालरी, बीन, रबाब, सुर मण्डल, मजीरा,

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण ‡डॉ० स्वतन्त्र शर्मा‡, पृष्ठ 88.

डिमडिम, शंख, भेरी पखावज, मुरली, वीणा आदि मुख्य रूप से प्रचलित थे। साथ ही इनके पदों को विभिन्न तालों में एक ताल, झप ताल, चचरी ताल, ध्रुव ताल, धमार ताल आदि में प्रयोग किये है।

मुस्लिम काल में जो संगीत अपने सीमित रूप में प्रसारित हो रहा था उस संगीत को इन्होंने जन-मानस में प्रचारित किया। इनके संगीत के भक्ति भावना से ओत-प्रोत होने के कारण जनमानस को और अधिक प्रभावित किया। संगीत जगत में इन संत संगीतज्ञ के योगदान को हमेशा याद किया जाएगा।

तुलसीदास

मध्यकालीन भक्त कवियों में तुलसीदास जी का योगदान संगीत में महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय संस्कृति के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म वर्ष सम्वत् 1554 वि0 में हुआ था।

तुलसीदास जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें मुख्यतः है - राम चरित मानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, दोहावली, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्नावली, हनुमान बाहुक आदि मुख्य हैं। तुलसीदास के कुछ ग्रन्थ धार्मिक संगीत से भरे है। इनका सर्वप्रमुख धार्मिक ग्रन्थ है "रामचरित मानस" जो पूर्णतया संगीत से परिपूर्ण है। तुलसीदास जी की रचना का विषय मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम के लोक पावन चरित्र का वर्णन करना है इन्होंने रचना में राम के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण किया है। मानव जीवन के विविध पहलुओं और मानव हृदय की कोमल,

कठोर तथा स्वाभाविक भावनाओं का सजीव चित्रण करना ही तुलसीदास की अपनी विशेषता है। ये भगवान राम के अनन्य भक्त थे।

तुलसीदास अकबर के समय के भक्त कवि थे मुस्लिम शासकों के प्रारम्भिक समय में भारतीय संगीत की स्थिति बहुत अच्छी नही थी। संगीत का प्रचार सुचारू रूप से नही हो पा रहा था। ऐसे समय में तुलसीदास ने भक्तिपूर्ण संगीत के द्वारा जन-जन में संगीत का प्रचार किया। तुलसीदास की सभी रचनाएं संगीत से परिपूर्ण थी। अकबर के काल में यद्यपि संगीत का अच्छा प्रचार प्रसार था, तथा इस काल में महान संगीतज्ञ हुए किन्तु जितना सांगीतिक उत्कर्ष तुलसीदास की कृतियों से हुआ उतना अन्य संगीतज्ञों से नही हुआ। संगीत के साथ-साथ साहित्य में तो इनका योगदान उल्लेखनीय ही रहा है। इन्होने अपनी कृतियों में राग-रागनियों का प्रयोग भी किया है। इन्होंने झालर, बीन, रबाब, मोरचंग जैसे वाद्यों का प्रयोग किया जो अब नही दिखाई देते

हैं। इन्होंने संगीत के विविध पक्षों को अपनाया है। इनके कुछ प्रमुख ग्रन्थों में जैसे सांगीतिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार इनकी सभी रचनाओं में संगीत का रूप दिखाई पड़ता है। तुलसीदास एक अच्छे साहित्यकार होने के साथ-साथ एक अच्छे संगीतज्ञ भी थे। "रामचरित मानस" के इस अमर गायक का देहावसान सम्वत् 1680 वि0 में हुआ।

मीरा

भक्तिकाल के कवियों में एक मात्र महिला कवियित्री मीरा थीं। जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। मीराबाई ने अपना सर्वस्व जीवन संगीत की सेवा में लगा दिया। वह भगवान श्री कृष्ण की अनन्य भक्त थीं। वह संगीत के सभी पक्षों गायन वादन तथा नृत्य सभी में निपुण थीं। इन्होंने करताल और एकतारा का अपने संगीत में अधिक प्रयोग किया। अपने अनुभव को वे काव्य और संगीत के द्वारा व्यक्त करती थी। उनके पदों में कृष्ण के प्रेम और विरह का ही वर्णन करती थीं। मीराबाई ने लोकगीतों को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। मीरा ने अपने संगीत में राग-रागनियों का प्रयोग किया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को एक नई दिशा प्रदान

की । इन्होंने अपने संगीत में भक्ति और धर्म का प्रयोग बड़ी ही कुशलता से किया है ।

मीराबाई के गाये गीत राजस्थान तथा गुजरात में अधिक गाये जाते हैं । इन्होंने अपना सारा जीवन ही संगीत की साधना में लगा दिया जो भारतीय संगीत के लिए इनकी अतुलनीय सेवा थी ।

मध्यकाल के इन श्रेष्ठ भक्तकवियों के साथ-साथ 16 वीं से 17 वीं शताब्दी में अनेक संगीत शास्त्री भी हुए है, जिनके संगीत के क्षेत्र में किये गये योगदान को कभी भुलाया नही जा सकता है, क्योंकि इनके द्वारा बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये है जिससे संगीत के प्रचार-प्रसार को महत्वपूर्ण योगदान मिला है। जिनके नाम कुछ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है, जिनमें रामामात्य, अहोबल, दत्तिल, दामोदर, नारद, पुण्डरीक बिट्ठल, भावभट्ट, मतंग, लोचन, सोमनाथ, हृदयनारायण देव आदि मुख्य है।

रामामात्य

प्रमुख संगीतशास्त्रियों में रामामात्य का नाम संगीत जगत में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। रामामात्य ने प्रसिद्ध ग्रन्थ "स्वरमेलकलानिधि" नामक ग्रन्थ की रचना की है। जो संगीत के प्रचार में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ की रचना 1550 ई0[1] के आस-पास का समय माना जाता है। इस ग्रन्थ की रचना आपने संस्कृत भाषा में की है। "स्वरमेल कलानिधि" नामक ग्रन्थ दक्षिण पद्धति से सम्बन्धित रखा है साथ ही साथ आपने इसको प्राचीन ग्रन्थों से सम्बद्ध रखा है।

पं0 रामामात्य विजयनगर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम तिम्बराज था और वे विजयनगर के राजा सदाशिव राय के प्रधानमंत्री थे। तिम्बराज

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 51.

के पुत्र राम के भी अपने पिता की अमात्य (मंत्री) की पदवी मिली, इसीलिए इनका पूरा नाम रामामात्य प्रसिद्ध हुआ। इन्हें संगीत से विशेष लगाव था। इसी से प्रेरित होकर इन्होंने "स्वरमेल कलानिधि" नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में बहुत से रागों का वर्णन उपलब्ध है। इसमें पांच प्रकरण उपलब्ध है।

1. उपोद्घात - प्रकरण
2. स्वर - प्रकरण
3. वीणा - प्रकरण
4. मेल - प्रकरण
5. राग - प्रकरण

उपोद्घात प्रकरण में पुस्तक की भूमिका है। स्वर प्रकरण में इन्होंने संगीत को "गांधर्व और गान" नामक दो भागों में विभाजित किया है और उसकी परिभाषा भी दी है। "गांधर्व संगीत" संगीत गांधर्वों द्वारा गाया बजाया जाता है। इसके विपरीत गान वह संगीत है जिसका निर्माण हमारे विद्वानों द्वारा हुआ है, जिसे हम देशी रागों के द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

रामामात्य ने बाइस श्रुति और सात शुद्ध स्वरों का वर्णन किया है। इनके संगीत की मुख्य विशेषता यह है कि यह अपने कुछ विचारों को शार्ड.गदेव से संयुक्त करने का प्रयत्न किया है।

"वीणा प्रकरण" में वीणा पर अपने शुद्ध और विकृत स्वरों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त वीणा की बनावट और उसको मिलाने की विधि का वर्णन भी किया है। साथ ही तारों के नीचे पर्दे कैसे बांधे जाते है इसका वर्णन किया है।

"मेल प्रकरण" में रामामात्य अपने रागों के वर्गीकरण के लिए बीस थाटों की स्थापना करते है। उनके बीस थाट निम्नलिखित है।

मुखारी, मालव गौल, श्री सारंग नट, हिंदोल, शुद्ध राम क्रिया, देशाक्षी कंनड गौल, शुद्ध नाट, आहीरी, नादरामकी, शुद्ध वराली, रीति गौड़, बंसत भैरवी,

केदार गौड़, हिज्जुजी, सामवराली, रेवगुप्त, सामत कॉम्भोजी ।

"राग प्रकरण" में उन्होंने इन 20 थाटों के अन्तर्गत अपने 63 रागों का वर्गीकरण किया है । इसके उपरान्त राग तथा जनक थाटों की संख्या विषयक मतभेदों को स्पष्ट करते हैं। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी किया गया है ।

16 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, दीर्घ आयु प्राप्त करने के पश्चात् पं० रामामात्य विजयनगर में ही स्वर्गवासी हो गये ।

<u>अहोबल</u>

संगीत के सुप्रसिद्ध शास्त्री अहोबल 17 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए हैं। संगीत के क्षेत्र में आपका योगदान सराहनीय रहा है। विद्वानों के मतानुसार आप दक्षिण के रहने वाले द्रविण ब्राम्हण थे। आपके पिता श्री कृष्ण पंडित संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। इसके बावजूद आपने संगीत की शास्त्रीय एवं क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त की। और अल्पकाल में ही अथक प्रयास तथा परिश्रम से उत्तर भारतीय संगीत में पूर्णतया दक्ष हो गए। "धनबड़" नगर के राजा के दरबार में पं० अहोबल नियुक्त हो गए। आपके गायन से दरबारी प्रसन्न थे। यहीं पर पं० अहोबल ने सन् 1650 ई०[1] के लगभग सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "संगीत पारिजातः"

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 3.

ग्रन्थ की रचना का कार्य सम्पन्न किया । इस ग्रन्थ की रचना आपने उत्तरीय पद्धति पर की है । जो संगीत जगत में विशेष रूप से प्रचलित है । अहोबल ने ही सर्वप्रथम वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न भागों से 12 स्वरों के स्वर स्थान सर्वप्रथम निश्चित किये है और बाद में इसी को संगीतज्ञों ने भी मान्यता प्रदान कर दी।

दत्तिल

दत्तिल के समय काल की तो निश्चित रूप से जानकारी नही है क्योंकि इनके विषय में ग्रन्थकार को नही ज्ञात था कि कब और कहां इनका जन्म हुआ है। इसका कोई भी ठोस प्रमाण अब तक उपलब्ध नही है। अनुमानतः कुछ ग्रन्थकारों ने इनका समय पाँचवी शताब्दी के आस-पास निश्चित किया है।

दत्तिल ने संगीत के प्रसिद्ध ग्रन्थ "दत्तिलम" की रचना की है जो संगीत जगत के लिए महत्वपूर्ण प्रयास रहा है। वैसे यह संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में इन्होने ताल स्वर और जाति का संक्षिप्त वर्णन किया है। इस ग्रन्थ की प्राचीनता से यह आभास होता है कि उस काल में संगीत का प्रचार था लोगों में संगीत के प्रति विशेष रूचि थी। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि संगीत प्राचीन काल से ही जगत में व्याप्त है।

<u>दामोदर</u>

दामोदर पंडित ने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "संगीत दर्पण" के द्वारा संगीत की सेवा की है। इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है। पं० दामोदर मिश्र मुगल बादशाह जहाँगीर (1625 ई०)[1] के समय में हुए हैं। इसी समय में इस ग्रन्थ की रचना की है।

"संगीत दर्पण" नामक संस्कृत ग्रन्थ के छह अध्यायों के अन्तर्गत संगीत की विस्तृत जानकारी दी गयी है। इन छह अध्यायों के नाम क्रमशः इस प्रकार है - स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रबंधाध्याय, वाद्याध्याय, तालाध्याय और नृत्याध्याय। वैसे तो यह एक संस्कृत ग्रन्थ है लेकिन हिन्दी फारसी और गुजराती भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो चुका है।

दामोदर पंडित के समय मे जो संगीत प्रचलित

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 19.

था, उसकी रूपरेखा भरतादिक प्राचीन ग्रन्थकारों के युग से कुछ भिन्न हो गयी थी, इसी से दामोदर पंडित ने प्राचीन संगीत की व्याख्या न करके अपने समय के संगीत का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है। विभिन्न अध्यायों में संगीत सम्बन्धी विषयों का वर्णन किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि संगीतज्ञ ने संगीत के बहुमुखी विकास की ओर ध्यान दिया है। प्रथम अध्याय में दामोदर पंडित ने ब्रम्ह एवं महादेव की वंदना की है। संगीत की उत्पत्ति इन्होंने देवी-देवताओं से माना है। अध्याय में संगीत की परिभाषा, मार्गी एवं देशी संगीत की व्याख्या, नाद की उत्पत्ति एवं परिभाषा स्वरों के विषय में इन्होंने 7 शुद्ध और 12 विकृत स्वर माने है। इसके अतिरिक्त ग्राम, मूर्च्छना, ग्रहादि स्थायी अंलकार और जातियों के लक्षण के विषय में दर्शाया है। दूसरे अध्याय में आपने रागों के विषय में विस्तृत जानकारी दी है। इसमें इन्होंने राग-रागनियों के विषय में विस्तृत जानकारी दी है। इन्होंने अपने विभिन्न अध्यायों में संगीत से सम्बन्धित समस्त जानकारी रखी है जिससे यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी सिद्ध रहा है।

नारद कृत संगीत मकरन्द

इस ग्रन्थकार के जन्म तथा वंश आदि के विषय में विस्तृत जानकारी नही प्राप्त है। कुछ ग्रन्थकारों ने अनुमानतः इनका समय 16 वीं सदी के लगभग माना है।

नारद ने "संगीत मकरन्द" नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में संस्कृत राग नामों के कुछ मुस्लिम नाम मिलते हैं। "संगीत मकरन्द" में स्वर, मूर्च्छना, राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। इस ग्रन्थ को चार प्रकार में विभक्त किया है। पुरूष तथा स्त्री रागों की भी चर्चा इन्होंने ग्रन्थ में की है। संगीत मकरन्द में वर्णित रागों के वर्ग "राग-रागिनी" पद्धति का आधार बने।

संगीत मकरन्द में वीणा के अट्ठारह प्रकार प्राप्त है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में नारद ने संगीत विषय पर विस्तृत जानकारी के द्वारा संगीत की सेवा की है। यह संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रहा है।

पंडित पुण्डरीक विट्ठल

पं0 पुण्डरीक विट्ठल जी का स्थान संगीत जगत में प्रतिभाशील संगीत लेखक के रूप में लिया जाता रहा है। आपने संगीत से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें प्रमुख रूप से सद्रागचन्द्रोदय, रागमंजरी, रागमाला और नृत्य निर्णय मुख्य रूप से हैं।

पंडित पुण्डरीक विट्ठल का निवास स्थान मद्रास प्रान्त के रामानाऊ में स्थित "सात्तनूर" ग्राम से है। यह जगदाग्नि गोत्री ब्राम्हण थे। यहीं से इन्होंने संगीत विद्या का ज्ञान प्रारम्भ किया था। इसके पश्चात यश प्राप्ति के उद्देश्य से आप 1570 ई0 के लगभग उत्तर भारत की ओर बढ़े। पंडित पुण्डरीक विट्ठल जी अकबर के काल के थे। यात्रा में सर्वप्रथम वह बुरहान पहुंचे। इसी स्थान पर राजाज्ञानुसार आपने सर्वप्रथम सद्रागचंद्रोदय" की रचना की। 22 श्रुतियों को पंडित जी ने स्वीकारा है और इन्हीं श्रुतियों पर स्वरों का विभाजन किया है। पुण्डरीक की वीणा भी आधुनिक वीणा के सदृश थी तथा तारों को मिलाने का ढंग भी एक समान था। उन्होंने जो सप्तक माना है स रे रे म प

ध ध सं वह दक्षिणी संगीत में भी शुद्ध सप्तक है। इन्होंने 22 श्रुतियों में अन्तिम श्रुति पर शुद्ध स्वर माने हैं तथा 19 थाट माने हैं। जिस समय इन्होंने सद्रागचंद्रोदय" की रचना की, उस समय संगीत की थ्योरी (शास्त्र) तथा प्रचलित संगीत पद्धति में विभिन्नता थी शास्त्र तथा प्रचार में साम्य लाने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गयी।

अकबर बादशाह कला प्रेमी था। पुण्डरीक विट्ठल जी अकबर के भतीजे जयपुर के राजा मानसिंह के आश्रय में उनसे मिलने की इच्छा से गये। वहीं उन्होंने जयपुर में रहते हुए मानसिंह की आज्ञानुसार द्वितीय ग्रन्थ "रागमञ्जरी" की रचना की। राग मञ्जरी में इन्होंने वादी सम्वादी आदि को परिभाषित किया है। इस समय वीणा का प्रचार कम होकर सितार का प्रचार पूर्णतया बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त मृदंग के स्थान पर तबले का प्रयोग होने लगा था। इन्होंने उत्तर भारतीय संगीत के उत्कर्ष में योगदान दिया। इस काल में संगीत की उन्नति विशेष रूप से दिखाई देती है। वैदिक काल में जो संगीत का प्रतिष्ठित स्थान

था वह इस काल में पुनः प्रतिष्ठित स्थान पर रहा है। संगीतज्ञों का समाज में सम्मान बढ़ा। संगीत के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ी। इस काल में संगीत के विविध पक्षों का सुचारू रूप से विकास हुआ। राग मञ्जरी में पुस्तक के प्रारम्भ में मानसिंह और उनके पिता तथा बादशाह अकबर की प्रशन्सा की गई है।

अकबर की आज्ञानुसार क्रमानुसार इन्होंने दो ग्रन्थ "रागमाला" और "नर्तन निर्णय" लिखे"। यह पुण्डरीक जी की आन्तरिक रचना थी। राग माला ग्रन्थ में इन्होंने रागों का राग-रागिनी और पुत्र रागों में वर्गीकरण किया है। साथ ही वादी सम्वादी अनुवादी विवादी, अंश ग्रह मास आदि को परिभाषित किया है। इन चारों ग्रन्थों के द्वारा आपने संगीत की समस्त सामग्री को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यह उनकी रचनाएं थी। इसी के पश्चात् ही आपकी मृत्यु हो गयी।

भावभट्ट

पं० भावभट्ट उत्तम ब्राम्हण कुल में पैदा हुए थे। कृष्ण पात्र आपका गोत्र है। इनके पिता का नाम श्री जनार्दन भट्ट तथा माता का नाम स्वप्र्णवा था। आप आभीर देश के धौलमु नामक नगर के निवासी थे[1]।

भावभट्ट ने संगीत से सम्बन्धित विषयों को ग्रन्थ का रूप दिया जो संस्कृत भाषा में है इनके नाम है - "अनूप विलास", "अनूप संगीत रत्नाकर", "अनूप संगीतांकुश" तथा मुरली प्रकाश आदि। आपका संगीतजगत में नाम प्रकाण्ड विद्वान के रूप में लिया जाता है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में संगीत विषयक विविध सामग्री के साथ-साथ अपने से पूर्व समय के ग्रन्थकारों के नाम अपने ग्रन्थ में दर्शाया है। आप बीकानेर नरेश महाराज

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 39.

अनूप सिंह के आश्रम में रहते थे।

"अनूप विलास" में इन्होंने नाद की उत्पत्ति, बाईस श्रुतियों और उन पर स्वर स्थापना के क्रम की व्याख्या की है। सप्तक के स्वरों में प्रत्येक का चित्र और उनके देवता का सविस्तार वर्णन किया है। "अनूप विलास" में उन्होंने 70 रागों का उल्लेख किया है - किन्तु उन्होंने रागों के थाट व स्वरों का वर्णन नही किया है।

"अनूप संगीत रत्नाकर" में इन्होंने आलप्ति, कुआंड और ध्रुपद को परिभाषित किया है। इसके अतिरिक्त रागों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया है तथा रागों के प्राचीन ध्रुपदों का भी वर्णन किया है।

अनूपांकुश में राग के वर्गीकरण को संगीत के अनुसार ही वर्णित किया है। रागों के विषय में लिखते समय विभिन्न ग्रन्थों के उद्धरण भी प्रस्तुत किये है। भावभट्ट संगीत के एक प्रतिभाशाली प्रकाण्ड संगीत लेखक के रूप में जाने जाते है इन्होंने अपने ग्रन्थों द्वारा संगीत की सेवा की है।

मतंग

भारतीय संगीत जगत में मतंग मुनि का प्रथम स्थान रहा है। जनश्रुति के अनुसार इनका काल छठीं शताब्दी बताती है। मतंग के द्वारा रचित एक सर्वप्रमुख संगीत ग्रन्थ है "बृहद्देशी"। मतंग मुनि संगीत के एक प्रकाण्ड पंडित थे।

मतंग द्वारा वर्णित "बृहद्देशी" ग्रन्थ में आठ अध्याय है। ताल और वाद्य पर भी इस ग्रन्थ में विचार व्यक्त किये है। बृहद्देशी में मतंग ने रागों के लक्षण और प्रस्तार दिये है। राग हमारे प्रचलित संगीत के प्राण हैं निश्चय ही बृहद्देशी में रागों के लक्षण और प्रस्तार से हमारे वर्तमान संगीत की कड़ी सहज ही प्राचीन संगीत से जुड़ती है। मतंग ने भरतोक्त सप्त स्वर मूर्च्छनाएं मानी तो है, परन्तु राग सिद्धि के लिए मूर्च्छना के आकार को बड़ा करके उसे द्वादश स्वर मानने पर बल दिया है, जिसमें सात स्वर एक सप्तक के तथा पाँच स्वर अन्य सप्तक के सम्मिलित है। मतंग ने देशी रागों की भी चर्चा की है। मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्यतः ग्राम राग और भाषा राग

अथवा देशी राग इन दो विभागों में किया है। मतंग ने अपने ग्रन्थ में नाद महिमा बताते समय नृत्य का नाम भी लिया है -

> न नादेन बिना गीतं, न नादेन बिना स्वराः।
> न नादेन बिना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत्[1] ।।

मतंग ने नाद के पांच भेद माने है - 1. सूक्ष्म, 2. अति सूक्ष्म, 3. व्यक्त, 4. अव्यक्त, 5. कृत्रिम।

मतंग ने प्रचलित पांच प्रकार की सांगीतिक रचनाओं का उल्लेख भी किया है - शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा, साधारणी तथा भाषा और विभाषा।

मतंग चित्रा वादक थे, इन्हें कुम्भ ने चैत्रिक कहा है। प्रो0 रामकृष्ण कवि के अनुसार किन्नरी वीणा के

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (स्वतंत्र शर्मा), पृ. 48.

आविष्कारक मतंग है ।[1] मतंग से पूर्व वीणा पर सारिकाएं यानि परदे नही होते थे । इन्होंने सबसे पहले वीणा पर सारिकाएं रखी। किन्नरी वीणा के तीन भेद लोक में प्रचलित हुए । बृहती किन्नरी, मध्यमा किन्नरी और लघ्वी किन्नरी । मतंग की किन्नरी पर चौदह परदे होते थे और 18 भी । तीव्र गधार और काकली निषाद के लिए अलग पर्दे नही रखे जाते थे ।

आधुनिक समय में प्रचलित वे सभी तंत्री वाद्य किन्नरी का विकसित रूप है, जिन पर पर्दे विद्यमान है। आधुनिक समय में मतंग का नाम बड़ी ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है इन्होंने संगीत के क्षेत्र में बहुत से कार्य किये है जो हमेशा याद किये जाते रहेंगे ।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 43.

लोचन

संगीत जगत में पं0 लोचन का नाम उच्चकोटि के संगीतज्ञ के रूप में लिया जाता है। पं0 लोचन का समय चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम तथा पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल मानते है। इस समय संगीत में परिवर्तन हो रहे थे अतएव लोचन ने इस परिस्थितियों को अच्छी तरह समझ कर संगीत विषयक ग्रन्थों की रचना करके संगीत का प्रचार किया।

पं0 लोचन का निवास स्थान मुजफ्फरपुर (बिहार) माना जाता है। आप मैथिल ब्राम्हण थे। आप संगीत शास्त्र जानने के साथ क्रियात्मक संगीत के भी अच्छे जानकार थे।

पं0 लोचन ने संगीत के दो प्रमुख ग्रन्थों की रचना की है "राग सर्वसंग्रह" और "राग तरंगिनी" विशेष रूप से है।

लोचन ने 22 श्रुतियां ही मानी है। श्रुतियों के द्वारा ही आप ध्वनि मापते थे। 22 श्रुतियों के

हिसाब से सप्त स्वरों का विभाजन 4-3-2-4-4-3-2 के आधार पर करते है। लोचन ने "राग तरंगिनी" में प्राचीन राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट पद्धति अपनायी है जिसको कारण थाट राग वर्गीकरण के लिए लोग आज भी याद करते है। लोचन ने अपना शुद्ध थाट वर्तमान काफी थाट के सदृश माना है। उनके शुद्ध ग और शुद्ध नि हिन्दुस्तानी पद्धति के कोमल "ग" और कोमल "नि" है। रागों के नाम तथा उनका गायन समय भी लोचन ने अपने ग्रन्थ राग तरंगिणी में किया है।

पं० लोचन के समय में संगीत जगत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। इसी से प्रेरित हो आपने इन ग्रन्थों की रचना की है। इन्ही रचनाओं के कारण आज संगीत संसार में इनको कभी भी भुलाया नही जा सकता है। इन्होने संगीत के क्षेत्र में काफी यश प्राप्त किया।

सोमनाथ

संगीत संसार के प्रकाण्ड विद्वान श्री सोमनाथ के जन्म के विषय में कुछ निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है फिर भी कुछ उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर आपका जन्म 16 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में कहा जा सकता है।[1] आपका निवास स्थान राज महेद्री नगर माना जाता है। इनके पिता का नाम मुद्रल पंडित था।

सोमनाथ जी ने संगीत कला के साथ-साथ साहित्य कला में भी महारथ हासिल थे यह दोनों क्षेत्रों में उच्चकोटि के विद्वान माने जा सकते है। सोमनाथ के काल में भी संगीत के शास्त्रों तथा प्रचलित संगीत में मतभेद था, इसी उददेश्य से इसे सुदृढ़ करने के लिए इन्होंने "राग बिबोध" नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का काल 1609 ई0 के आस-पास माना जाता है। "राग विबोध" में उत्तर और दक्षिण दोनों पद्धतियों के

---

1 हमारे संगीत रत्न [लक्ष्मी नारायण गर्ग], पृ. 66.

स्वर नामों का प्रयोग रचयिता ने किया है। यह ग्रन्थ विशेषत: दक्षिणी संगीत की प्रतिष्ठाता है। इन्होंने भी अन्य ग्रन्थकारों के सदृश बाईस श्रुतियों पर स्वरों के श्रुतियों पर आधारित नियम माने है। परन्तु वीणा के दंड पर बाईस श्रुतियों की स्थापना के लिए जो ढंग अपनाया वह पं० शार्ङ्ग्देव से अपनाया। उन्होंने वीणा के तारों के नीचे बाईस पर्दे लगा कर उनसे बाईस श्रुतियों को उत्पन्न किया था। तारों की सम्पूर्ण लम्बाई के आधार पर स्वर "मन्द्र षडज" की ध्वनि देते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से "राग विबोध" उत्तरी संगीतज्ञों के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इन्होंने अपने जीवन काल में अपूर्व यश प्राप्त किया है। पं० सोमनाथ स्वभाव से दानी प्रवृत्ति के धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। इस प्रकार इस यशस्वी विद्वान का शरीरांत 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हो गया।

हृदयनारायण देव

संगीत जगत के प्रख्यात संगीतशास्त्री हृदयनारायण देव ने दो लघु ग्रन्थों की रचना की जिनके नाम है "हृदय प्रकाश" और "हृदय कौतुक" ।

हृदय नारायण देव गढ़ामडंला के राजा थे । यह स्थान मध्यप्रदेश में है । इनके पिता का नाम प्रेम शाह उर्फ प्रेम नारायण था । हृदयनारायण देव का समय 17 वीं शताब्दी ही निश्चित किया गया है ।

हृदयनारायण देव की दोनों रचनाएं "हृदय कौतुक" और "हृदय प्रकाश" संस्कृत भाषा में है और उत्तरी संगीत पद्धति में यह सर्वमान्य है ।

हृदय कौतुक ग्रन्थ की रचना लोचन के "राग तरंगिणी" से लेकर की है इसके विपरीत हृदय प्रकाश की

रचना अहोबल के "पारिजात" का आधार लेकर की है। इसमें शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान यथार्थतः निर्धारित किये हैं। पुराने बारह थाट इन्होंने "राग तरंगिणी" से ही गृहीत किये है। थाट योजना सुन्दर ढंग से किया है। "हृदय प्रकाश" में इन्होंने वीणा के तारों की लम्बाई की ध्वनि के आधार पर शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थानों का प्रतिपादन किया है। रागों का वर्गीकरण भी किया है। इस ग्रन्थ में सप्तक के स्वरों को स्पष्टतः रखकर उन्होंने समस्त संगीत प्रेमी तथा जिज्ञासुओं का अत्यन्त उपकार किया है। इस प्रकार इन ग्रन्थों के द्वारा आपने संगीत जगत की जो सेवा की है वह सराहनीय है।

अंग्रेजों के शासनकाल में संगीत आम जनता से हटकर राज-दरबारों घरानों आदि में ही रह गया था। परन्तु संगीत के इन महान संगीत उद्धारकों ने संगीत को पुनः जीवित करने का प्रयास किया। संगीत को आम जनता में ले जाने में इन आधुनिक संगीतकारों का महान योगदान रहा है। जिसे कभी भुलाया नही जा सकता है। संगीतिक दृष्टि से आधुनिक काल को दो वर्गों में बाटेंगे -

1. पूर्वार्धं आधुनिक काल ‡ 1800 - 1900 ‡
2. उत्तरार्ध आधुनिक काल ‡ 1900 से आज तक ‡

पूर्वार्ध आधुनिक काल में जिन संगीत उद्धारकों का योगदान रहा उनमें मुख्य है, मुहम्मद शाह रंगीले, सदारंग, अदारंग, वाजिद अलीशाह, मुहम्मद रजा और सौरेन्द्र मोहन टैगोर आदि।

मुहम्मद शाह रंगीले

मुगलकाल का अन्तिम बादशाह तथा बहादुर शाह का पोता मुहम्मद शाह रंगीले 1719[1] में गद्दी पर बैठा। मुहम्मद शाह संगीत कला एवं रागरंग का अत्यन्त प्रेमी था। इसी कारण उसका नाम रंगीला पड़ा। राजनीतिक दृष्टि से तो उसका शासनकाल उतना महत्व-पूर्ण नहीं रहा किन्तु सांगीतिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण रहा। वह संगीतज्ञों को आदर की दृष्टि से देखता था तथा उसका बड़ा सम्मान करता था। इसी कारण उसके दरबार में उच्चकोटि के महाकवि रहते थे। जिनमें देव जैसे साहित्य संगीत निष्णात मुख्य थे। इसके अतिरिक्त सदारंग जैसे उच्चकोटि के संगीत शिरोमणि भी विद्यमान थे।

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (डॉ० स्वतन्त्र शर्मा), पृ. 114.

रंगीले के शासनकाल में संगीत की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसके शासन काल में संगीत का विशेष उन्नति हुई, इसीलिए सांगीतिक दृष्टि से उन्नति का काल कहा जा सकता है। क्योंकि ध्रुपद, धमार, गायकी के स्थान पर ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली जैसी गायन शैलियों का विकास हुआ। वीणा को स्थान पर सितार जैसे नवीनतम तंतु वाद्य का प्रचार एवं विकास भी इसी काल में हुआ था। वह स्वयं संगीत प्रेमी थे। इसी कारण उसके दरबार में बहुत से संगीत-कार और रचयिता ने आश्रय लिया और ख्याति प्राप्त की। जिनमें प्रसिद्ध गायक और रचयिता अदारंग और सदारंग मुख्य है। मुहम्मद शाह रंगीले संगीत के प्रति पूर्वतया समर्पित रहे है।

<u>सदारंग</u>

अंग्रेजों के शासनकाल में जब संगीत अवनति की ओर जा रहा था। आम जनता में संगीत का प्रचार कम ही रहा था उसी समय कुछ संगीत उद्धारकों में सदारंग का नाम भी है। उ0 सदारंग संगीत के अच्छे जानकार थे। उ0 नेमत खां "सदारंग" संगीत के युग पुरूष थे। उ0 सदारंग परमील खां के पुत्र खुसरो खां के अग्रज तथा फिरोज खां "अदारंग" के चाचा थे। अपने संगीत की गायकी की दिशा में परिवर्तन किये उन्होंने ख्याल गायकी की नवीन शैली तथा नवीन रूप प्रदान किया। इसके अतिरिक्त आपने अनेक ख्यालों की रचनाएं की। आप एक कुशल वीणा वादक भी थे। परन्तु ख्याल गायन शैली की ओर विशेष लगाव था। उन्होंने कव्वाली की परम्परा की ख्याल गायकी को एक नया रूप दिया तथा नवीन शैली दी। जिससे ख्याल की विषय वस्तु में भारतीय श्रृंगार आ गया। इन संगीत उद्धारकों के द्वारा भारतीय संगीत के प्रचार प्रसार को विशेष बल मिला।

मुहम्मद शाह बादशाह ने सन् 1719 ई0 से सन् 1748 ई

तक दिल्ली में राज्य किया ।[1] राजनीतिक दृष्टि से उसका शासन महत्वपूर्ण नही रहा। किन्तु संगीत कला की दृष्टि से उसका शासन काल महत्वपूर्ण था । उसके दरबारी बीन कार नियामत खां ने अपनी बनायी चीजों में मुहम्मदशाह का नाम उनकी प्रशंसा में डाल दिया करते थे । नियामत खां ने मुहम्मद शाह का नाम संगीत क्षेत्र में अमर कर दिया । संगीत के क्षेत्र में इनके योगदान को कभी भी भुलाया नही जा सकता है ।

"सदारंग को कई विद्याओं एवं अनेक भाषाओं पर अधिकार था । ये प्रत्येक मुस्लिम महीने की बारहवीं तारीख को अपने घर पर संगीत सभा रखते थे जिसमें दिल्ली के अमीर और रईस आते थे। रात भर महफिल चलती, सदारंग भी गाते अथवा वीणा बजाते थे। यह एक प्रकार की संगीत गोष्ठी (सर्किल सिटिंग) होती थी ।[2]

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 389.

2 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 असित कुमार बनर्जी), पृ. 27.

<u>अदारंग</u>

भारतीय संगीत के उद्धारकों और प्रचारकों में अदारंग का नाम भी छोड़ा-.जा सकता । उन्होंने संगीत के प्रचार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये है ।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक "फिरोज खां अदारंग" एक उच्चकोटि के कलाकार थे । आपने भी रंगीले के समान अनेक ख्यालों की रचनाएं की । यद्यपि वे स्वयं तो ध्रुपद अधिक गाते थे परन्तु उनके द्वारा रचित ख्याल आजकल खूब प्रचार में हैं। इसके अतिरिक्त आप एक कुशल वीणा वादक भी थे ।

आधुनिक काल में ख्याल गायकी का अधिकाधिक प्रचार हो गया था । इसके अतिरिक्त तंत्र वाद्यों के क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन आधुनिक काल में हुए । वीणा

के स्थान पर सितार का प्रयोग रंगीले के काल में ही प्रारम्भ हो चुका था । अदारंग ने इस वाद्य को जारी रखने में पूरा योगदान दिया । इसी समय सितार पर संगत की आवश्यकता हुई फलस्वरूप खुसरों ने तबले का आविष्कार किया । उस पर संगत के लिए ठेके का प्रचार किया । इस प्रकार इस काल में सितार का प्रचार खूब हो रहा था । इसके अतिरिक्त गायन की एक शैली टप्पा का प्रचार भी इनके काल में हुआ । इस काल में लोगों को शास्त्र का ज्ञान नही था । इस समय कुछ नये संगीतज्ञों की खोज हुई तथा विभिन्न गायन शैलियों का प्रचार हुआ । सांगीतिक दृष्टि से उन्नति काल रहा । इनके काल में संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था को प्राप्त हो गया था ।

वाजिद अली शाह

पूर्वार्ध आधुनिक काल के संगीत उद्धारकों में वाजिद अली शाह का शासन 1846 से 1856[1] ई0 तक रहा। वाजिद अली शाह स्वयं भी संगीत प्रेमी थे। इसी कारण इनकी रूचि भी ललित कलाओं की ओर थी। उन्होंने अनेक संगीतज्ञों को भी प्रोत्साहन दिया तथा आश्रय प्रदान किया। उनके दरबार में अहमद खाँ, ताज खाँ, गुलाम खाँ और दुल्ली खाँ उत्तम गायक थे तथा स्त्रियों में जोहरा, मुश्तरी, हेदरी श्रेष्ठ संगीतज्ञ थीं। वाजिद अली शाह ने अपने दरबारी नर्तक ठाकुर प्रसाद व उनके भाई दुर्गा प्रसाद जी से नृत्य की शिक्षा भी ली। वाजिद अली शाह उत्तम गायक व वाग्गेयकार भी थे। उन्होंने "अख्तर" उपनाम से अनेक सादरे, ख्याल, ठुमरी और गजलों की रचना की। वाजिद अली शाह के समय में

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण ॥स्वतंत्र शर्मा॥, पृष्ठ 117.

ही कुतुबुददौला अच्छे सितार वादक थे।

वाजिद अली शाह के समय तक संगीत की स्थिति अच्छी थी। अनेक नवीन गायन शैलियों का जन्म हुआ। नवीन वाद्यों का जन्म हुआ। अनेक संगीतज्ञों का योगदान हुआ। परन्तु वाजिद अली शाह के बाद लगभग बहादुर शाह जफर के समय तक अंग्रेजों के पूरी तरह व्यवसायी होने के कारण भारतीय संगीत के प्रति वे काफी उदासीन थे। राजा रजवाडों पर वे अधिकार करने लगे। दिल्ली आदि के संगीतज्ञ कुछ विशेष रियासतों में बसने लगे। जहॉ उन्हें विशेष आश्रय मिला। अतः संगीत अब रामपुर, अवध, पटियाला, हैदराबाद, बनारस आदि शहरों में केन्द्रित हो गया। संगीत का ह्रास प्रारम्भ हो गया। यद्यपि कुछ कलाकारों ने इसे संजोए रखना चाहा। उसको संरक्षण दिया जिनमें बहादुर शाह जफर आदि कलाकार मुख्य है फिर भी संगीत का पूर्ण रूपेण विकास सम्भव न हो सका। संगीतज्ञों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अंग्रेजी शासन के दौरान संगीत कुछ प्रमुख रियासतों तक ही सीमित रह गया। संगीत की यह स्थिति कुछ ही सालों तक रही। परन्तु धीरे-धीरे संगीत में पुनः

सुधार प्रारम्भ हुआ । जो संगीत जन सामान्य के उपयोग की वस्तु न रह गयी थी रियासतों तक ही सीमित हो गयी थी उसने धीरे-धीरे पुनः स्थान बनाना प्रारंभ किया । कुछ संगीत विद्वानों ने संगीत के महत्व को समझा । कुछ अंग्रेजी विद्वानों ने भी उसके महत्व को समझकर संगीत विषय पर पुस्तकों को लिखना प्रारम्भ कर दिया । फलस्वरूप संगीत ने रियासतों से हटकर आम जनता में अपना स्थान बनाना प्रारम्भ कर दिया था। संगीत के शास्त्रीय तथा क्रियात्मक दोनों पक्षों का विकास हुआ । संगीत के विभिन्न घरानों की स्थापना हुयी । संगीतकारों के लिखे ग्रन्थों द्वारा जनता में शास्त्रीय संगीत के प्रति पुनः जागृति हुयी ।

मुहम्मद रजा

अंग्रेजों के शासन काल के समय जब संगीत की पुर्नजागृति हो रही थी संगीत अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने में लगा था । उसी समय भारतीय संगीतशास्त्रियों ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष विशेषतः योगदान दिया । उन्हीं में मुहम्मद रजा का नाम भी प्रमुख है। मुहम्मद रजा का आर्विभाव संगीत जगत में देदीप्यमान ज्योति के रूप में हुआ । इतिहास वेत्ताओं के अनुसार इस विद्वान का समय अठारवीं शदी का अन्त एवं 19 वीं शदी का प्रारम्भ निश्चित होता है । नवाब आसिफुददौला संगीत प्रिय बादशाह था । उसने अपने शासनकाल में अनेक संगीतज्ञों को आश्रय प्रदान किया । नवाब आसिफुददौला ने मुहम्मद रजा को भी आश्रय प्रदान किया । आपने प्रसिद्ध उर्दू ग्रन्थ "नगमाते आसफी" की रचना की ।

मुहम्मद रजा उस समय प्रचलित राग-रागिनी वर्गीकरण से सन्तुष्ट नही थे इसी लिए उन्होंने अपना एक नवीन राग-रागिनी वर्गीकरण किया। "नगमाते आसफी" में शुद्ध स्वर सप्तक बिलावल माना है। यही सप्तक आज के हिन्दुस्तानी संगीत का आधार है। उन्होंने मुख्य रागों को लिया और उनकी पुत्र-वधुओं के रूप में वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि रजा निःसन्देह एक प्रतिभाशाली संगीतज्ञ थे।

इस समय संगीत के विकास के नये कदम उठाये जा रहे हैं। संगीत के अनेक ग्रन्थ इस काल में लिखे गये जिनमें संगीत विषयक सामग्री का समावेश किया गया। इस काल के मुख्य ग्रन्थों में संगीत-सार तथा राग कल्पद्रुम आदि मुख्य थे।

<u>सौरेन्द्र मोहन टैगोर</u>

सन् 1840[1] ई0 में जन्मे सौरेन्द्र मोहन ठाकुर अंग्रेजी शासन के समय अव्यवस्थित संगीत स्थित के उद्धारक के रूप में उत्पन्न हुए। सौरेन्द्र मोहन की प्रारम्भिक शिक्षा उनके पिता हरकुमार ठाकुर के पास ही प्रारम्भ हुई। इन्होंने सौरेन्द्र मोहन को ध्रुपद और सितार वादन की शिक्षा दी।

शिक्षा के साथ-साथ संगीत विषय की ओर आप अधिक आकृष्ट हुए। आपने प्रख्यात बीनकार स्व: लक्ष्मी प्रसाद मिश्र के पास वीणा तथा कंठ संगीत की शिक्षा ली। सौरेन्द्र मोहन ने संगीत के ज्ञानार्जन के लिए अथक प्रयास किया। संगीत से आपको विशेष लगाव था। संगीतज्ञों को आश्रय प्रदान किया और उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। आपने भारतीय संगीत के लिए जो

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 82.

कुछ किया वह सराहनीय है। आपने ही सर्वप्रथम संगीत सम्मेलनों की वास्तविकता समझी और अनेक संगीत सम्मेलन कराये। फलस्वरूप अनेक प्रमुख कलाविद आपके पास आये।

सौरेन्द्र मोहन ने संगीत के अनेक ग्रन्थों की भी रचना की। आपने भारतीय संगीत के साथ-साथ योरोपीय संगीत का भी अनुशीलन किया। आपने ग्रन्थ लेखन के लिए देश-विदेश में भ्रमण किया और उसके आधार पर अनेक ग्रन्थों की रचना की जिसमें आपको संगीताचार्य स्व: क्षेत्रमोहन स्वामी तथा स्व: काली प्रसन्न बन्दोपाध्याय की इन्हें सहायता प्राप्त हुयी। सौरेन्द्र मोहन के ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है -

1. Hindu Music from various Authors,
2. English Versus said to be Hindu Music,
3. Six Principal Ragas of Hindus,
4. Hindu music,
5. यंत्र क्षेत्र दीपिका,
6. जातीय संगीत विषयक प्रस्ताव,

7. मृदंग म जरी,
8. ऐक्यतानल,
9. हारमोनियम सूत्र,
10. यंत्रकोष,
11. विक्टोरिया गीतिका,
12. गान्धर्व कल्प व्याकरणम,
13. कंठ कौमुदी,
14. संगीत सार संग्रह,
15. Short Notices of hindu Musical Instruments,
16. Seven Principal Musical Notes of the hindus with their Presiding deitis,
17. Universal history of Music,
18. The eight Principal Ragas of hindus,
19. Hindu Music,
20. The Musical Scales of hindus,
21. Prince Pancheet,
22. Victoria Samrajan.

इनका लिखा हुआ

"The Universal History of Music"

नामक ग्रन्थ सर्वाधिक प्रचलित हुआ ।

सौरेन्द्र मोहन ने संगीत के प्रचार प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने संगीत को राजमहलों से बाहर निकालकर आम जनता में प्रचारित किया। संगीत को जनता तक पहुंचाने के लिए अनेक विद्यालयों की स्थापना की। जिनमें "बंगल एकेडमी ऑफ म्यूजिक" की स्थापना आपने सन् 1883 ई0 में रमाशंकर भट्टाचार्य की सहायता से की।[1]

विदेशों में आपको विभिन्न पदकों से सम्मानित भी किया गया। जिनमें अमेरिका के फ्लोडेलफिया विश्व विद्यालय (सन् 1875 ई0) तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय (1896 ई0) ने आपको "डाक्टर आफ म्यूजिक" की उपाधियों से विभूषित किया। संगीत की सेवा करते हुए सौरेन्द्र मोहन का देहावसान 5 जून शुक्रवार सन् 1914 ई0 को हुआ।

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 असित कुमार बनर्जी), पृ0 84.

पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे

भारतीय इतिहास के उत्तरार्ध आधुनिक काल अर्थात् 1900 से वर्तमान समय तक संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है । इस काल में संगीत अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो चुका था । इस समय में अनेक महापुरूषों का आर्विभाव हुआ । जिन्होंने सभी क्षेत्रों में विशेषकर संगीत क्षेत्र में भारतीय राष्ट्र में नवचेतना का संचार किया । जिनमें लोकमान्य तिलक, बंगाल में स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द घोष पंजाब में लाला लाजपत राय नव जागरण के प्रदर्शक के रूप में हुए । हिन्दी साहित्य के सृजन तथा समृद्धि में जिस प्रकार महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास का नाम है उसी प्रकार भारतीय संगीत में पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी का नाम लिया जा सकता है । अंग्रेजी शासन के बढ़ते प्रभाव के कारण भारतीय संगीत की अध्यात्मिकता का ह्रास होता जा रहा था। संगीत कुछ अशिक्षित लोगों तक ही रही थी । उस समय संगीत के पुर्नजागरण की आवश्यकता हुई । उसी समय बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक ग्राम के एक उच्च घराने में 10 अगस्त सन्

1860 ई0[1] को श्री भातखण्डे जी का जन्म हुआ। बचपन से ही आपकी रूचि संगीत की ओर थी। आपने सितार की शिक्षा ली और तीन वर्ष के अन्दर ही अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्होंने अपने संगीत से सभी को प्रभावित कर लिया था।

भातखण्डे जी के समय संगीत अवनति की तरफ जा रही थी। जो कुछ संगीत था वह कुछ हिन्दू तथा मुसलमान, अल्पसंख्यक कलाकारों तक ही सीमित था। ऐसे कठिन समय में संगीत को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से भारतीय संगीत कला के प्रसिद्ध कलाकारों से सम्पर्क स्थापित किया तथा उनके संगीत को सुना। फलस्वरूप प्रभावित होकर संगीत कला के गूढ़ अध्ययन के लिए आपने स्वयं "बम्बई के गायन उत्तेजन मंडल" में संगीत शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त आपने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन भी किया। भातखण्डे जी ने अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप दुष्प्राप्य रचनाओं का संकलन कर एक वृहद ग्रन्थ

---

1 हमारे संगीत रत्न ।लक्ष्मी नारायण गर्ग।, पृ. 70.

का आकार प्रदान करके आधुनिक संगीत जगत को अत्यधिक समृद्ध किया ।

भारतीय संगीत का साहित्य भारत के विभिन्न प्रान्तों की भिन्न-भिन्न भाषाओं में बिखरा पड़ा था । इसके लिए आपने अपनी संगीत यात्रा 1904 ई0 में प्रारंभ की । अपना सांगीतिक अभियान आपने सर्वप्रथम दक्षिण भारत की ओर से प्रारम्भ किया । वहाँ आपने संगीत ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया । और विद्वानों के साथ विचार-विमर्श करके संगीत को आम जनता में सर्व सुलभ कराया ।

प्राचीन समय में संगीत शिक्षा गुरू शिष्य प्रणाली के द्वारा ही किया जाता था । जिसका परिणाम यह होता था कि रागों के विषय में गूढ़ जानकारी नही हो पाती थी । किन्तु भातखण्डे जी ने संगीत को शास्त्रीय विवेचन प्रदान किया । स्वर ताल-लिपि पद्धति का आविष्कार कर तथा जनता के सम्मुख रखकर अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है ।

दक्षिण भारत के पश्चात् उत्तरी पूर्वी भारत में

आपने अपना संगीत अभियान चलाया । जिसके दौरान आपने सम्पूर्ण भारत के प्रमुख शहरों में विचरण करके वहाँ के संगीत ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा संगीतकारों के साथ मिलकर संगीत गोष्ठियां की । जिसके दौरान उन्हें ज्ञात हुआ कि संगीत काफी अव्यवस्थित अवस्था में है तथा उसे एक निश्चित व्यवस्था प्रदान करने की जरूरत है । तदुपरान्त आपने संगीत के पुनः उत्थान के लिए संगीत ग्रन्थों को लिखा । उन्होंने राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर ठाठ पद्धति को चलाया जिसका प्रचार बढ़ता ही गया । संगीतज्ञों को यह ठाठ-पद्धति अच्छी लगी । आपने एक सरल स्वर-लिपि पद्धति का आविष्कार किया । जिससे लोगों को संगीत का ज्ञान आसानी से कराया जा सके । इन्होंने संगीत के विस्तृत प्रचार-प्रसार के लिए अनेक ग्रन्थों का सृजन किया । उन्होंने संगीत को आम जनता में जन सुलभ कराने के लिए जगह-जगह संगीत सम्मेलनों का आयोजन किया । जिसके तहत सन् 1916 में बड़ौदा में सम्मेलन कराया । जिसका उद्घाटन

महाराज बड़ौदा द्वारा हुआ । जिसमें विचार-विमर्श के दौरान एक "आल इण्डिया म्यूजिक अकादमी" की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ । इसके बाद भी कई सम्मेलन कुछ प्रमुख शहरों में हुए । जिनमें दिल्ली बनारस लखनऊ आदि आते है । इन संगीत सम्मेलनों में संगीत सम्बन्धी विषयों पर विचार किया गया ।

इसके अतिरिक्त संगीत के प्रचार-प्रसार तथा सर्व-सुलभ कराने के लिए उन्होंने अनेक जगहों पर संगीत विद्यालयों की स्थापना की । जिनमें लखनऊ का मैरिस म्यूजिक कालेज (अब भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय), ग्वालियर का माधव संगीत विद्यालय, तथा बड़ौदा का म्यूजिक कालेज विशेष उल्लेखनीय हैं। इन विद्यालयों में इन्हीं की स्वर-लिपि एवं ग्रन्थ के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है ।

भातखण्डे जी ने अनेक ग्रन्थों का भी सृजन किया । जिसके अध्ययन से मनुष्य संगीत के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है और अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । पण्डित जी के इस प्रयास को भुलाया नहीं जा

सकता है। आपके द्वारा लिखित कुछ पुस्तकों में मराठी में लिखित "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" इसके अतिरिक्त लक्ष्य संगीत, "शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे", "ए कम्परेटिव स्टडी तथा "क्रमिक पुस्तक मालिका" आदि। आपकी लिखी ये पुस्तकें कालेजों के पाठ्यक्रम में भी शामिल की गयी है।

इस प्रकार पण्डित जी के इन महान कार्यों को संगीत जगत में कभी भुलाया नही जा सकता है। संगीत जगत में आपका नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

भारतीय संगीत के महान निर्माता तथा संगीतज्ञ गणेश चतुर्थी के दिन 19 सितम्बर, 1936 ई0 में परलोक सिधार गये।

पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर

भारतीय संगीत के जगत में संगीतादि विषयों के प्रचार-प्रसार में जिन महान विभूतियों का योगदान है उनमें संगीताचार्य पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। पंडित विष्णु दिगम्बर जी के योगदान को संगीत संसार कभी विस्मृत नही कर सकता है। कहा गया है :

"क्रिया सिद्धः सत्वे भवति महत्ता नोपरणौं।"[1]

अर्थात् महापुरुषों के कार्य की सिद्धि किन्ही विशिष्ट गुणों से युक्त अपने निजी सत्व में होती है।

संगीताचार्य पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा), पृ. 127.

महाराष्ट्र के कुरून्दवाड नामक एक देशी राज्य में, 18 अगस्त सन् 1872 को हुआ था।[1] इनके पिता का नाम दिगम्बर पंत था जो कीर्तनकार थे। हरि कीर्तन उनका वंश परंपरागत धंधा था। पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी की अल्प आयु में ही किसी दुर्घटनावश उनके नेत्रों की ज्योति चली गयी जिसके कारण इनकी अंग्रेजी शिक्षा बन्द हो गई। अतः पिता ने इन्हें मिरज में श्री बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर के पास भेज दिया। पं० जी ने इनसे संगीत शिक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी। बड़ी बड़ी सभाओं और संगीत गोष्ठियों में पं० पुलष्कर जी अपने गुरूजी के साथ रहते थे। पं० जी ने अपनी संगीत साधना से संसार को पर्याप्त समृद्ध किया। गुरूजी के साथ रहने से उनकी गायन शैली पंडित जी ने अच्छी तरह सीख ली। उनकी गायन कला से मिरज नरेश इतना प्रभावित हुए कि उन्हें अपना राजाश्रय प्रदान किया। ये संगीत शिक्षा और गुरू सेवा में ही तल्लीन रहते थे।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 359.

पं० जी के गायन में रस और भाव आलाप जोड़ ताने सभी का प्रभाव था। इसी कारण उन्होंने अपनी गायन कला से सभी को आकर्षित कर लिया था। वे ध्रुपद गायन शैली पर अधिक बल देते थे।

भारतीय संगीत की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने अथक प्रयास किये। उन्होंने देखा कि भारतीय संगीत की स्थित समाज में अच्छी नही है तथा संगीत को थोड़ा हेय दृष्टि से देखते थे। इन परिस्थितियों से वह प्रभावित हुए। और उन्होंने यह निश्चय किया कि संगीत को पुनः खोई हुयी प्रतिष्ठा प्राप्त कराना है। और समाज के उच्चवर्ग में पुनः पहुंचाना है। इसी के लिए सन् 1890 में संगीत के प्रसार करने के लिए बड़ौदा, ग्वालियर, मथुरा, जालन्धर, जोधपुर, मॉटगोमरी, अहमदाबाद, कलकत्ता, प्रयाग, कांगड़ा आदि स्थानों का भ्रमण किया। तत्पश्चात् इन्होंने अनुभव किया संगीतज्ञों को उच्चवर्ग में सम्मान की दृष्टि से नही देखा जाता है। इन्होंने संगीत के उत्थान के लिए उसे धार्मिक रूप प्रदान किया। संगीत के अश्लील शब्दों के स्थान पर भक्तिपूर्ण शब्दों को स्थान दिया। उन्होंने धर्म का प्रचार संगीत कला के माध्यम से करना अधिक श्रेयस्कर

समझा । उन्होंने भारतीय संगीत का प्रचार देश के कोने-कोने में किया और भारतीय संगीत की पवित्रता और निर्मलता बनाये रखा । फलस्वरूप भारतीय संगीत में इतनी परिपक्वता आ गई कि विश्व के संगीत में इसकी तुलना नही की जा सकती है । उन्होंने संगीत को ही एक मात्र सत्य मानकर उसे ही एक मात्र मोक्ष का साधन माना ।

उन्होंने संगीत के विकास के लिए अनेक संगीत विषयक पुस्तकों का सृजन किया । जिनमें मुख्यतः "संगीत बालबोध" "भारतीय संगीत लेखन पद्धति" "संगीत तत्व दर्शक" "अंकित अलंकार" "राग प्रवेश" "नारदीय शिक्षा सटीक" टप्पा गायन आदि।

उन्होंने संगीत के प्रचार के लिए अनुभवी शिष्य बनाये । जिनमें संगीत मार्तण्ड पं० ओंकार नाथ ठाकुर पं० विनायक राव पटवर्धन आदि प्रमुख है ।

इसके अतिरिक्त संगीत को सर्वसुलभ कराने के लिए अनेक संगीत विद्यालयों की स्थापना भी की । जिनमें सर्वप्रथम 5 मई 1901[1] में लाहौर में गांधर्व महाविद्यालय

---

1 हमारे संगीत रत्न ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 360.

स्थापित किया । उसके पश्चात् बम्बई में गान्धर्व महाविद्यालय स्थापित किया । इसके अतिरिक्त देश के कुछ प्रमुख शहरों में भी संगीत संस्थाएं खोली थी । जिससे जन-समुदाय में संगीत का प्रचार हो सके । अंग्रेजी शासन के प्रभाव के बावजूद आपने संगीत को पुनः प्रतिस्थापित करने के लिए अपना सर्वस्व लगा दिया ।

पण्डित जी ने भातखण्डे से भिन्न एक स्वर-लिपि का निर्माण किया । संगीत पुजारी पंडित जी का देहावसान 21 अगस्त सन् 1931 को महाराष्ट्र के मिरज नगर में हुआ ।[1] दिगम्बर के संगीत के प्रति महान योगदान और सेवा भाव के कारण उनकी कीर्ति कौमुदी की प्रतिभा आज भी वैसे ही प्राप्त है ।

उनके सम्मान में मिस्टर राना डे लिखते है :

---

1 हमारे संगीत रत्न ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 362.

In more recent years, notable contribution towards the study of music was made by men like late Pandit Vishnu Digamber of country wide fame faud a learned disciple of the famous Balkrishna Buwa. It was really he who rescued music from the clutches classes, prepared the way for the theories of Pandit Bhatkhande and others. He also devised a system of music - Notation which is capable of recording old songs in a very faithful manner. The Chief merit of the Pandits work lies in the fact that he published in notation the songs with all their progressions, embelishment, rhythmic variations and has thus left to posterty the compleate units continuous and whole performance as it were, of old classical songs.[1]

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (स्वतंत्र शर्मा), पृ. 131.

आपके द्वारा स्थापित "गान्धर्व महाविद्यालय मंडल" अब विकसित होकर एक महान संगीत संस्था के रूप में संगीत की सेवा कर रहा है, इसकी शाखाएं भारत भर में फैली हुयी है, जिनके द्वारा हजारों विद्यार्थी संगीत ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

बालकृष्ण बुआ इचल करंजीकर

श्रेष्ठ गायक तथा कुशल संगीतज्ञ श्री इचल करंजीकर देश के महान संगीतकारों की श्रेणी में आते हैं। इन महापुरूष का जन्म कोल्हापुर के पास, चंदूर नामक ग्राम में राम चन्द्र बुआ के यहां सन् 1849 ई0 में हुआ था। आपके पिता स्वयं भी एक कुशल गायक थे। जिसका पारिवारिक प्रभाव आप पर भी पड़ा और जन्म से ही आपकी रूचि संगीत कला की ओर निरन्तर बढ़ती गयी। पिताजी ने तो इन्हें पूर्ण सहयोग प्रदान किया किन्तु माता की हार्दिक इच्छा नही थी कि इस छोटे से बालक को संगीत की शिक्षा दी जाये। परन्तु इसके बावजूद भी संगीत के प्रति पूर्ण निष्ठा होने के कारण ये घर से बाहर संगीत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निकल ही पड़े। इस समय आपकी आयु मात्र 10 वर्ष की थी।

गृह त्याग के पश्चात आप पहले महैसाल पहुचे।

जहाँ पर विष्णु बुआ भोगलेकर के आश्रय में रहकर आपने संगीत का प्रशिक्षण लिया और अल्प समय में ही आप ध्रुपद धमार ख्याल और टप्पा सभी शैलियों में निपुण हो गये। तत्पश्चात् आपने कोल्हापुर में भाऊबुआ से संगीत कला सीखने का प्रयत्न किया। संगीत सीखने की तीव्र उत्कण्ठा लिए आपने देवजी बुवा, हस्सू हद्दू खां तथा जोशी बुआ से शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अपनी संगीत साधना से संगीत संसार को पर्याप्त समृद्ध किया। जोशी बुआ से नियमित शिक्षा प्राप्त करके अल्प समय में गायनाचार्य बन गये।

अंग्रेजी शासन होने के बाद भी आपके प्रयास से भारतीय संगीत को काफी प्रोत्साहन मिला। और संगीत का प्रचार प्रसार समस्त देश में व्याप्त हो गया। संगीत के प्रसार के लिए आपने अनेक संगीत सम्मेलनों में भाग लिया। इसके लिए आपने देश-विदेश में अनेक स्थान पर भ्रमण किया।

संगीत जगत में उनके द्वारा किये गये योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। उन्होंने संगीत को प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के लिए "गायन समाज" की स्थापना की और संगीत दर्पण नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया।

आपने कुछ समय बाद मिरज छोड़कर इचल करंजीकर में राज गायक की पदवी स्वीकार कर ली। तभी से आप "इचल करंजीकर" के नाम से प्रसिद्ध हुए।

<u>राजा नवाब अली</u>

भारतीय संगीत के उद्धारकों में राजा नवाब अली के नाम को कभी भुला नही सकते। बाल्यकाल से ही आपका संगीत के प्रति इतना लगाव था कि इन्होंने संगीत की साधना में अपना सर्वस्व जीवन लगा दिया। इसके साथ ही भातखण्डे जी का सहयोग और सम्पर्क भी आपको मिला। भातखण्डे जी के संगीत से आप बहुत प्रभावित हुए और उन्ही की संगीत पद्धति को अपनाकर अपने संगीत में स्थान भी दिया।

राजा नवाब अली ने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर के काले खां से ली थी। इसके पश्चात उस्ताद नजीर खां और मुहम्मद अली खां से शिक्षा प्राप्त की। आपने सितार की भी शिक्षा ली थी। सितार में तो लगाव था ही किन्तु गायन संगीत में इनकी विशेष रूचि थी। उन्होंने गायन की विभिन्न शैलियों को विशेष

लगाव के साथ सीखा। ध्रुपद धमार शैली में आप पूर्णतया निपुण हो गये थे। आपने "मुआरिफुन्नगमात" नामक प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थ की भी रचना की। तथा इसमें संगीत विषयों का संकलन किया। आप के समय में संगीत आम जनता से विमुख होकर कुछ खास लोगों तक ही सीमित था। फलस्वरूप आप ने जनता की कठिनाइयों को समझा और संगीत को सरल रूप प्रदान कर आम लोगों में संगीत को पहुंचाया। संगीत के नवोदित कलाकारों के आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ "मुआरिफुन्नगमात" ग्रन्थ विशेष लाभकारी सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त आपने इस ग्रन्थ में बड़े बड़े उस्तादों संगीतज्ञों के विषय में जानकारी तथा रामपुर सदारंग परम्परा में गायी जाने वाली बन्दिशें भी है। यह ग्रन्थ संगीत क्षेत्र के कुछ प्रमुख ग्रन्थों में से एक है। इसका संगीत के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

संगीत के प्रचार के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व लगा

दिया इसके लिए जगह-जगह भ्रमण किया लोगों से सम्पर्क संगीत सम्बन्धी विषयों पर चर्चा की। संगीत गोष्ठी का आयोजन किया। संगीत में व्याप्त कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास किया। संगीत को सरल सहज बोधगम्य बनाया जिसका लाभ साधारण नागरिक भी उठा सकें। संगीत के प्रति आपकी इस लगन तथा निष्ठा का परिणाम यह हुआ कि संगीत का विकास क्षेत्र बढ़ा और संगीत अधिकाधिक लोगों में जाना समझा जाने लगा।

पं0 रामकृष्ण

संगीत के उद्धारकों तथा महान प्रचारकों में पं0 रामकृष्ण का नाम भी बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। पं0 रामकृष्ण का जन्म सन् 1871 ई0 में सावन्तवाड़ी के ओझा नामक ग्राम में हुआ था। बाल्यकाल से ही आप आर्थिक तंगी में पले बढ़े। प्रारम्भिक शिक्षा तो बलवन्त राव पोहूरे नामक दरबारी गायक से हुई। तत्पश्चात् बिठौवा अन्नाहड़प के पास रहकर गायकी की शिक्षा ली। इसके बाद इन्दौर में नाना साहब पानसे संगीत की शिक्षा ली। इसके पश्चात् आप ग्वालियर गये वहां पर खाँ साहब निसार हुसैन से काफी समय तक संगीत शिक्षण लिया। इस प्रकार इन्होंने अपने जीवन-काल में यह अनुभव किया कि आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण उन्हें शिक्षा ग्रहण करने में काफी दिक्कतें आयीं। अधिकतः उस्ताद संगीत शिक्षा देने में

बहुत संकीर्ण मनोवृत्ति के होते थे। इसी कारण इन्होंने इस कठिनाई को दूर करने की ओर विशेष ध्यान दिया। इसके लिए इन्होंने अनेकों संगीत सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करायीं। जिससे आर्थिक रूप से कमजोर लोग इन पुस्तकों के माध्यम से संगीत सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सके। उसे संगीत से अनभिज्ञ न रहना पड़े। इस प्रकार इन्होंने लोगों की परेशानियों को समझकर उसे दूर करने का प्रयास किया जो सफल भी रहा। इस प्रकार संगीत की सेवा करते करते आप 5 मई 1945 ई0 को पूना में चिरनिन्द्रा में समा गये।

राजा भैया पूंछ वाले

राजा भैया ने भारतीय संगीत की अभिवृद्धि के लिए प्रबल प्रयास किये। रामचन्द्र राव जी के दो पुत्र थे, बड़े श्री गणपति राव जी और छोटे श्री आनन्द राव जी। यही श्री आनन्द राव जी राजा भैया के पिता थे।

श्री राजा भैया का जन्म लश्कर ग्वालियर में श्रवण कृष्ण 14, संवत 1939 वि. 12 अगस्त सन् 1882 ई0 को हुआ था। बहुत छोटी उम्र में ही आप लकवे का शिकार हो गए। आपके पिता श्री आनन्द राव जी स्वयं सितार के कुशल वादक थे। तथा सितार के प्रति विशेष रूचि थी। इस प्रकार आपको पारिवारिक माहौल संगीतमय मिला जिसका प्रभाव यह पड़ा कि राजा भैया के हृदय में भी संगीत को सीखने की प्रबल इच्छा जाग्रत हुई। इस प्रकार बाल्यकाल से ही पढ़ाई के साथ-साथ संगीत शिक्षा भी प्रारम्भ हो गयी। सर्वप्रथम आपने खाँ साहब मेंहदी हुसैन खाँ के शिष्य श्री बलदेव जी से शिक्षा प्राप्त

की और बहुत थोड़े समय में ही आप एक कुशल हारमोनियम वादक हो गये। और "शिंदे क्लब" ग्वालियर संगीत नाटक मंडली में हारमोनियम मास्टर के पद पर नियुक्त हो गये।

कुछ समय में ही आपकी माता जी का भी देहान्त हो गया इस प्रकार पारिवारिक रूप से टूट चुके थे साथ ही साथ आर्थिक रूप से भी तंग थे।

आपने पं० लाला बुवा से भी संगीत शिक्षण लिया। फिर इनकी मृत्यु के बाद पं० बुवा से शिक्षा लेने लगे। परन्तु सन् 1907 में वामन बुवा की भी मृत्यु हो गई। परन्तु तब तक आपने संगीत सम्बन्धी सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इसके पश्चात् आपने पं० शंकर राव से शिक्षा ग्रहण करने लगे। सन् 1917 में पं० शंकर राव भी स्वर्गवासी हो गए।

आपने भातखण्डे जी से सरल स्वरलिपि पद्धति को सीखकर ग्वालियर में 10 जनवरी 1918 को यहां पर

"माधव म्यूजिक कालेज" की स्थापना की। इन्होंने संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए काफी प्रयास किया। जिसके तहत इन्होंने संगीत विधालय की स्थापना की तथा इसके द्वारा उन्होंने बहुत से योग्य शिष्य तैयार किये जिनके द्वारा संगीत का प्रचार विभिन्न स्थानों पर हो सके। आपमें एक कुशल संगीतकार के सभी गुण विधमान थे। आपने संगीत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों को भी लिखा। 1. तान मलिका भाग - 1, 2. तान मलिका भाग-2, 3. तान मलिका भाग - 3 (पूर्वार्द्ध), 4. तान मलिका भाग-4 (उत्तरार्द्ध), 5. संगीतोपासना, 6. ठुमरी तरंगिणी, 7. ध्रुपद धमार गायन।

आप एक कुशल संगीतकार थे। आप 15-15 घन्टे लगातार बैठकर गायन प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। अप्रैल 1956 में भारत के राष्ट्रपति ने राजा भैया को "राष्ट्रपति पदक" तथा सर्वश्रेष्ठ गायक की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1956 में 1 अप्रैल को आप स्वर्ग सिधार गये। भारतीय संगीत की अभिवृद्धि के लिए इन्होंने जो महत्वपूर्ण कार्य किये वह हमेशा संगीत के इतिहास में याद किया जायेगा।

श्री डी0 वी0 पलुस्कर

आधुनिक काल के संगीत प्रचारकों में जिस महान विभूतियों का सहयोग रहा है उनमें श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के पुत्र श्री डी0 वी0 पलुस्कर का नाम आता है। श्री दत्तात्रय पलुस्कर जी का जन्म 18 मई 1921[1] ई0 को कुरून्दवाड़ में हुआ था। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद इनके पिता जी ने इन्हें संगीत सिखाना शुरू किया। किन्तु अधिक अधिक दिन तक उनके भाग्य में अपने पिता से सीखना न लिखा था। 1931 में पिता जी की मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक वे नासिक में अपने चचेरे भाई श्री चिंतामणि पंत से संगीत सीखते रहे। अन्त में सन् 1935 में वे पूना गांधर्व महा विद्यालय में आ गए। वहाँ वे पं0 विनायक राव पटवर्धन से कई वर्षों तक शास्त्रीय संगीत का अध्ययन करते रहे। पं0 नारायण राव व्यास, मिराशी बुवा आदि संगीतज्ञों से भी उन्होंने लाभ उठाया। गांधर्व महा विद्यालय में उन्होंने

----

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 172.

अध्यापन का कार्य भी अत्यन्त सफलतापूर्वक किया । विद्यालय की सर्वोच्च परीक्षा संगीत प्रवीण में उन्होंने अभिनन्दनीय यश प्राप्त किया । इन्होंने अपने पिता के समान भारतीय संगीत की सेवा में अपना सर्वस्व जीवन लगा दिया । आप एक कुशल गायक थे। आपने विभिन्न जगह देश-विदेशों में अपने कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये ।

सन् 1935 के दिसम्बर महीने में पं0 विनायक राव जी के साथ आप लाहौर आए। सारा पंजाब ही पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी को अपना गुरू मानता था जिसके कारण आपसे भी लोग काफी प्रभावित हुए। जालंधर के उल्लेखनीय मेले में उनका प्रथम सार्वजनिक कार्यक्रम हुआ था । सन् 1938[1] में आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र पर उनका सबसे पहला कार्यक्रम विष्णु दिगम्बर जी की स्मृति में दिवस के अवसर पर हुआ । धीरे-धीरे उनकी लोकप्रियता बढ़ती गई। उन्होंने देशभर में संगीत का प्रचार करने के लिए अनेकों कलाकारों को संगीत शिक्षा दी तथा कई योग्य शिष्य को भी तैयार किया । उन्होंने यह अनुभव किया कि

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 173.

संगीत शिक्षा के बिना संगीत का ज्ञान सभी को नही हो सकता। संगीत की शिक्षा देना ही अपना मुख्य काम समझा। तालीम के अतिरिक्त उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व की भी सुंदर झलक उनकी गायकी में थी। किसी भी घराने या गायकी से कोई भी अच्छी चीज लेकर उसका अपनी गायकी में अन्तर्भाव करने में उन्होंने कभी संकोच नही किया इसीलिए उनकी कला हमेशा विकासोन्मुख रही। अत्यन्त मधुर कंठ स्वर, ऊंचे दर्जे की तालीम निरंतर साधना और हर अच्छी चीज को अपनाने की वृत्ति के कारण ही उनकी गायकी इतनी लोकप्रिय हुयी। पलुस्कर जी की गायकी में उच्चकोटि की ख्याल गायकी के इन सभी अंगों का अपूर्व समन्वय था। संगीत के लिए भाव प्रकाशन के महत्व को वे भली प्रकार समझ पाये थे। शुद्ध मुद्रा और शुद्ध वाणी के नियम से वे चलते थे। स्वर व लय का मुश्किल काम करते हुए सम पर आना उनकी अपनी विशेषता थी। वे अपना गायन श्रोताओं के अनुसार करते थे। आपके पिता श्री विष्णु दिगम्बर जी ने संगीत के व्यापक प्रचार के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन ही संगीत की सेवा में लगा दिया था, और उन्हीं के आदर्शों पर आप भी चले। जल्सो, संगीत सम्मेलनों के अलावा उनके ग्रामोफोन रेकार्ड भी बहुत लोक प्रिय हुए आकाशवाणी पर तो जो सर्वप्रियता उन्हें मिली

वह दुर्लभ थी । वैसे तो भारतीय शास्त्रीय गायन बाहर के देशों में पसंद नहीं किया जाता, परन्तु उनकी अपूर्व सफलता ने इसे असत्य सिद्ध कर दिया ।

पलुस्कर जी ने अपने पिता जी की लिखी हुयी कई पुस्तकों का अत्यन्त योग्यतापूर्वक संपादन किया । वे एक अत्यन्त उच्चकोटि के रचनाकार भी थे । अनेक बंदिशों तथा भजनों की बहुत सुन्दर स्वर रचनाएं उन्होंने की ।

लेकिन दत्तात्रय जी अधिक दिनों तक देश की सेवा नहीं कर सके। क्योंकि अल्पकाल में ही 35 वर्ष की अल्पायु में ही देहान्त हो गया । परन्तु इस अल्प समय में ही इन्होंने संगीत जगत् के लिए जो काम किया वह हमेशा याद किया जायेगा। उन्होंने नवीन कलाकारों को ऊपर उठाने का प्रयास भी किया । फलतः संगीतज्ञों ने संगीत के महत्व को समझा और जन-सामान्य में संगीत के प्रति रूचि जागृत हुयी ।

मिस्टर क्लीमेण्ट

भारतीय संगीतकारों ने तो संगीत की सेवा की ही साथ ही कुछ अंग्रेजी विद्वानों ने भी भारतीय संगीत के महत्व को समझकर संगीत के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। जिनमें मिस्टर क्लीमेण्ट का नाम आता है। इन्होंने भारतीय संगीत के गहन अध्ययन के लिए विभिन्न संगीत पुस्तकों का अध्ययन किया। तथा संगीत सम्बन्धी चर्चा की बहुत से खोज किये। उन्होंने राग-रागनियों का भी गूढ़ता से अध्ययन किया। विदेशों में लोग भारतीय संगीत की ओर उतना आकर्षित नही थे तथा भारतीय संगीत के महत्व को नही समझते थे। मिस्टर क्लीमेण्ट की इच्छा थी कि लोगों में भारतीय संगीत के महत्व को समझाया जाये लोगों को संगीत के प्रति रूचि जागृत की जाये इसके लिए सबसे उपयोगी समझा कि पुस्तकों के द्वारा ही योरोपीय देशों में भारतीय संगीत का प्रचार प्रसार किया जा सकता है। इसके

लिए उन्होंने अनेकों पत्र-पत्रिकाएं तथा ग्रन्थों की रचना की। जिसको पढ़कर लोगों में संगीत के प्रति उसकी मूल धारा से परिचित हो सके। और उनका यह प्रयास सफल भी रहा। यूरोपीय देशों में अंग्रेजों की तरह भारतीय संगीत को निम्न दृष्टि से नही देखा जा रहा था। उनका दृष्टिकोण भारतीय संगीत के प्रति बदल गया था। वो लोग भारतीय संगीत को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे तथा भारतीय संगीत को सीखने समझने का भी प्रयास किया। मि0 क्लीमेण्ट ने भारतीय संगीत के महत्व को समझा और उसके प्रचार में जो योगदान दिया उनके इस महान कार्य को भारत में हमेशा याद किया जायेगा।

<u>मिस्टर डैनेलू</u>

भारतीय संगीत के महत्व को समझने वाले अंग्रेजी विद्वानों में एक और नाम मिस्टर डैनेलू का भी आता है । इन्हें भी भारतीय संगीत से विशेष लगाव था । वे स्वयं एक विद्वान संगीतज्ञ थे। इन्होंने भी यूरोप में भारतीय संगीत को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए प्रयास किया। ये स्वयं भारतीय संगीत को बड़ी श्रद्धा से देखते थे। तथा उससे बहुत प्रभावित हुए थे। इन्होंने इस कार्य के लिए अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया । विभिन्न संगीत ग्रन्थों का अध्ययन भी किया। भारतीय संगीत सीखने की कोशिश की। इसके लिए देशभर में भ्रमण किया और भारतीय संगीत की गूढ़ता को जानने का प्रयास किया ।

उन्होंने 1943 ई0 " Indian Society of London" से एक स्वयं लिखी पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम था - "An Introduction of the Study of Musical Scales".

इसके अतिरिक्त आपने भारतीय संगीत के सम्पूर्ण इतिहास को एक पुस्तक में लिखा जिसका नाम था "उत्तर भारतीय संगीत" इस पुस्तक से यूरोप वासियों को भारतीय संगीत को सीखने समझने में सहायता मिली। इसी के द्वारा वहां के देशों में भारतीय संगीत का प्रचार हो सका। मि० डेनेलू ने भारतीय संगीत के लिए जो कार्य किये उसे भारतीय संगीत कभी नही भुला सकता। इस प्रकार इन सभी विद्वानों द्वारा जो भारतीय संगीत के प्रचारार्थ किया उससे प्रभावित होकर भारतीय सरकार ने भी संगीत के प्रचार प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये और देश में संगीत को सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।

अध्याय - तीन

स्वतन्त्रता के समय भारतीय संगीत एवं तंत्र वाद्यों की स्थिति

तंत्र वाद्य का विवरण

हमारे देश में प्राचीन काल से लेकर स्वतंत्रता के समय अर्थात् आधुनिक काल तक अनेक वाद्य भारतीय संगीत जगत् में आये। भारत का विभिन्न देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण कुछ विदेशी तंत्र वाद्य भी भारत मे प्रचार में आये आधुनिक समय में हम जिन वाद्यों को देख रहे है यह सहस्रों वर्षों पूर्व के प्राचीन वाद्यों का क्रमिक विकास का परिवर्तित तथा संशोधित रूप ही है। तंत्री वाद्यों में प्राचीनकाल से अब तक उनके रूपों में, तंत्री संख्या में, निर्माण सामग्री में बहुत से परिवर्तन होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ

सैद्धान्तिक परिवर्तन आधुनिक वाद्यों में हुए है।

प्राचीन काल में तत् वाद्यों में चाहे धनुषाकार वीणा हो या वेदों में उल्लिखित बाण अथवा बेबीलोनिया मिश्र आदि में पाया जाने वाला हार्प या लायर हो, सभी वाद्यों में प्रत्येक स्वर के लिए एक ही तार का प्रयोग होता था तथा प्रत्येक में स्वरों को उत्पन्न करने की एक ही प्रक्रिया होती थी। जिसमें तारों को उंगलियों से या नखों से छेड़कर वादन किया जाता था।

धीरे-धीरे स्वरोत्पत्ति का विकास होने लगा जो भरतनाट्यशास्त्र के कुछ वर्ष पूर्व हुआ इसमें किसी कठोर वस्तु अर्थात् बांस की गोल शलाका को पकड़कर उसे तार पर रगड़कर तथा बीच-बीच में उठाकर विभिन्न स्वर उत्पन्न किये जाते थे। तथा दाहिने हाथ में कोण अथवा नख के प्रहार से तार को छेड़ा जाता था। इस प्रकार एक तार पर वांछित स्वर निकाले जाने लगे थे। वर्तमान समय की विचित्र वीणा (बट्टाबीन) गोट्टुवाद्यम् आदि इसी वीणा का विकसित रूप है।

एक ही तार पर भिन्न भिन्न स्वर तो उत्पन्न हो जाते थे किन्तु इसमें स्वरों के सही स्थान ज्ञात करने

के लिये कलाकार में सूक्ष्म स्वर ज्ञान व कठोर साधना की अत्यन्त आवश्यकता होती थी । इसी कठिनाई को देखते हुए वीणा के दण्ड पर स्वर स्थानों के लिए पक्षियों की हड्डियों का प्रयोग होना प्रारम्भ हुआ । उसके बाद लोहा या पीतल का प्रयोग होने लगा । इन्हीं स्वर स्थानों को प्रारम्भ में सारिका, मध्ययुग में सुन्दरियां और आधुनिक काल में परदा कहा जाने लगा ।

एकतंत्री वीणा में तो केवल एक ही तार प्रयुक्त होता था इसलिए इसके तारों की कोई विशेष व्यवस्था की आवश्यकता नही हुयी किन्तु त्रितंत्री, वीणा में, किन्नरी वीणा उसके बाद रूद्रवीणा और तंजोरी वीणा का विकास हुआ और तारों की वृद्धि के साथ-साथ उनकी व्यवस्था की आवश्यकता हुयी और तृतीय विकास वाद्यों में हुआ इसमें मुख्य वादन तंत्री को वामपार्श्व में रखा गया तथा चिकारियों के लिए मुख्य घुड़च के नीचे वाम पार्श्व में ही एक छोटी ऊपर की ओर उठी हुयी घुमावदार घुड़च रखी गयी । इस प्रकार प्राचीन समय से लेकर तंत्र वाद्यों में अनेक परिवर्तन हुए तथा उनका विकास कई रूपों में हुआ । वैसे तो वीणा के कई भेद प्राचीन काल में प्रचलित रहे हैं । किन्तु वर्तमान समय में वीणा

के एक दो प्रकार ही प्रचलित है। इस प्रकार स्वतंत्रता के समय आधुनिक काल में जो तंत्र वाद्य प्रचलित है वे इस प्रकार है -

1. विचित्र वीणा
2. महानाटक वीणा या गोट्टुवाद्य म्
3. दक्षिणात्य या तंजोरी वीणा
4. सितार
5. सरोद
6. स्वर मण्डल
7. सारंगी
8. इसराज
9. सुरबहार
10. दिलरूबा
11. सुर सिंगार
12. वायलिन
13. सन्तूर

शास्त्रीय ग्रन्थों में तो अनेक प्रकार की वीणाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। नारद रचित संगीत मकरन्द नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में वीणा के उन्नीस भेद बताए गए है जिनके नाम हैं : -

1. कच्छपी
2. कुब्जिका
3. चित्रा
4. बहल्ती
5. परिवादिनी
6. जया
7. घोषवती
8. नकुली
9. ज्येष्ठा
10. महत्ती
11. वैष्णवी
12. ब्राह्मी
13. रौद्री
14. कूर्मी
15. रावणी
16. सारस्वती
17. किन्नरी
18. सैरन्ध्री
19. घोषका

इसके अतिरिक्त भी अन्य वीणाएं यत्र तत्र उपलब्ध है।

इनमें से कुछ वीणाओं का वर्णन यहां लिख रहे है -

एकतंत्री वीणा

इस एक तंत्री वीणा का प्रचार लगभग तेरहवीं शताब्दी तक अत्यधिक रहा है। क्योंकि उस काल के ग्रन्थों और मन्दिरों और गुफाओं आदि में इस वीणा के चित्र तथा वर्णन मिलता है। कहते है कि इस वीणा में एक तार होता था इस कारण इसे एक तंत्री वीणा कहते थे। आचार्य भरत के शिक्षक भगवान ब्रह्मा इस वीणा को बजाते थे। जिस कारण इसे ब्राह्मी वीणा भी कहते हैं। इस वीणा में सारिकाएं नही रहती थी। इस वीणा में बाये हाथ में बारह अंगुल लम्बी एक शलाका लेकर उससे तार पर विभिन्न स्वरों की सारणाएं की जाती थीं।

भरत, मतंग तथा नारद आदि के समय में जिसे घोषक घोषवती अथवा ब्राह्मी वीणा के नाम से अभिहित किया जाता था, उसे ही नान्यदेव, सुधाकलश तथा शार्ङ्गदेव के समय एक तंत्री वीणा के नाम से जाना जाने लगा। किन्तु नारद के संगीत मकरंद में वीणाओं के विभिन्न प्रकारों के विषय में कहा है कि सबमें सूक्ष्म

भेद रहा होगा ।

तन्त्री भेदैः क्रिया भेदैर्वीणावाद्यमनेकधा ।[1]

एक तंत्री वीणा के विषय में कहा जाता है कि इसका दर्शन और स्पर्श ही मोक्ष प्रदायक है क्योंकि इसमें शिव दण्ड रूप, पार्वती तन्त्री रूप, ककुभ विष्णु रूप, लक्ष्मी पत्रिका रूप, ब्रह्मा तुंब रूप, सरस्वती कद्दू की नाभि रूप, दोरक वासुकि रूप, चन्द्र जीवा रूप तथा सूर्य सारिका रूप है। यह एक तंत्री वीणा ही वर्तमान युग में विचित्र वीणा अथवा बट्टा बीन के नाम से प्रचलित हैं।

<u>चित्रा वीणा</u>

इस वीणा को सप्त तंत्री वीणा भी कहा जाता है। आचार्य भरत के अनुसार इस वीणा में सात तार होते है इसी कारण से इसे सप्ततंत्री वीणा भी कहते है।

---

1 कालीदास साहित्य एवं संगीतकला (डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 107

इस वीणा का वादन केवल उंगलियों से ही किया जाता है ।

नकुली वीणा

कुछ प्राचीन ग्रन्थों में इस वीणा का वर्णन मिलता है । नकुल अथवा नकुली वीणा इसके नामान्तर हैं । यह द्वितंत्री वीणा है । इस वीणा का प्रचार ईसा की तृतीय चतुर्थ शताब्दी पूर्व से लेकर तेरहवीं शताब्दी पर्यन्त रहा। इसके पश्चात् लगभग इसका प्रयोग समाप्त सा हो गया है ।

महती वीणा

प्राचीन समय में प्रचलित वीणाओं में महती वीणा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह देवर्षि नारद की वीणा के रूप में प्रसिद्ध थी - "महती नारदस्य च" । इस वीणा में इक्कीस तार होते थे जिस पर तीनो सप्तक मिले होते थे, इसमें तीनों ग्राम तथा 21 मूर्च्छनाएं भी स्पष्ट रूप से वाद्यमान थीं । कुछ विद्वानों ने इसे ही "मत्तकोकिला" नाम से निरूपित किया है । दोनों वीणाओं में तारों की संख्या समान है । सम्भव है एक

ही वीणा के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में दो नाम रहे होंगे ।

रूद्र वीणा अथवा रौद्री वीणा[1]

रूद्र वीणा का सर्वप्रथम उल्लेख नारदकृत संगीत मकरन्द नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है । रूद्रवीणा में स्थापित एक सप्तक में बारह स्वर स्थान होते हैं जिस कारण भारतीय विद्वानों ने ग्यारह रूद्र तथा एक महारूद्र के दर्शन इस वीणा में किये । इसलिए इस वीणा को रूद्र वीणा कहा गया । कुछ विद्वानों के अनुसार रूद्रवीणा, किन्नरी वीणा का ही परिष्कृत रूप है रूद्र वीणा के अनेक रूप भेद हैं - जिनमें दो रूपों को प्रचार विशेष रूप से हुआ । सरस्वती वीणा तथा तंजोरी वीणा । इसमें से सरस्वती वीणा सोलहवीं तथा तंजोरी वीणा सत्रहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध हुयी ।

संगीत परिजात एवं संगीत सार में रूद्र वीणा के छः भेद तारों की संख्या के आधार पर बताये गये हैं -

1. नकुली वीणा - जिस रूद्र वीणा में दो तार लगे हों।
2. त्रितंत्री वीणा - जिस रूद्र वीणा में तीन तार लगे हों ।
3. राजधानी वीणा - जिस रूद्र वीणा में चार तार लगे हों ।

---

1 चित्र नं0 5 व 6 पृष्ठ सं0 356 पर अंकित है.

4. विपंची वीणा - जिस रूद्र वीणा में पाँच तार लगे हों ।

5. सर्वरी वीणा - जिस रूद्र वीणा में छः तार लगे हों।

6. परिवादिनी वीणा - जिस रूद्र वीणा में सात तार लगे हों ।[1]

प्राचीन नामों से युक्त रूद्र वीणा के भेद उनके पुराने रूपों से सर्वथा भिन्न है ।

रावणी अथवा रावणहस्त वीणा[2]

प्राचीन कालीन ग्रन्थों में इस वीणा का उल्लेख मिलता है । इस वीणा को रावणहस्त अथवा रावणास्त्र भी कहते हैं। कहा जाता है कि लंका में इसी प्रकार का एक वाद्य अति प्राचीन काल से प्रचलित था । इसको घुमक्कड़ जाति के लोग बजाया करते थे। भारत के लोग इस वाद्य से मिलते जुलते होने के कारण ही अपने वाद्य का नाम रावण वीणा या रावणास्त्र दिया । ग्रन्थों में

---

1 कालीदास साहित्य एवं संगीतकला (डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 113.

2 चित्र नं0 2 व 3 पृष्ठ सं0 355 पर अंकित है.

उपलब्ध विवरणों के आधार पर इस वीणा के दो रूप दिखते है एक है सारंगी के समान तथा दूसरा आधुनिक रावण हत्था के सदृश है ।

किन्नरी वीणा *

सारिका युक्त वीणाओं में किन्नरी वीणा का महत्वपूर्ण स्थान है । कुछ प्राचीन ग्रन्थों में इस वीणा के विषय में वर्णन है संगीत रत्नाकर के अनुसार इसके दो भेद हैं - लघ्वी किन्नरी एवं बृहती किन्नरी ।

प्रो० राम कृष्ण कवि के अनुसार मतंग किन्नरी वीणा के आविष्कारक थे । वीणा पर सर्वप्रथम परदों की व्यवस्था मतंग ने ही की । इससे पूर्व वीणाओं में सारिका नही होती थी। मतंग की किन्नरी में चौदह में चौदह तथा अठारह सारिकाएं होती थीं।[1] तीव्र गांधार और काकली निषाद के लिए पृथक सारिकाएं नहीं थीं । इन्हें तार खींचकर निकाला जाता था । वादन भी

---

1 कालीदास साहित्य एवं संगीत कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ), पृ. 115.

* चित्र नं० 4 पृष्ठ सं० 356 पर अंकित है.

केवल एक तार पर ही होता था। इस प्रकार एक स्वर तार पर तथा अठारह स्वर सारिकाओं पर मिलने के कारण अब वादक उन्नीस स्वर प्राप्त कर लेता था। आधुनिक युग सभी तंत्री वाद्य जो सारिका युक्त है किन्नरी वीणा के ही विकसित रूप है।

त्रितन्त्री वीणा*

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि तीन तारों से युक्त वीणा को ही त्रितन्त्री वीणा कहा गया है इसका उल्लेख करते हुए शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर में कहते है -

स्यादन्वर्था त्रितन्त्रिका।[1]

शार्ङ्गदेव के काल में प्राचीन कालीन वीणाओं में अनेक परिवर्तन हो रहे थे प्राचीन कालीन इसी त्रितन्त्री वीणा का परिष्कृत रूप ही आज का सितार तथा तानपुरा के

---

1 कालीदास साहित्य एवं संगीत कला । डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ।, पृष्ठ 116.

* चित्र नं0 13 पृष्ठ सं0 360 पर अंकित है.

नाम से जाने जाते हैं। रूद्र वीणा के छह भेदों में से एक भेद त्रितंत्री ही है। लेकिन दोनों में अन्तर है प्राचीन त्रितंत्री वीणा सारिका रहित थी जबकि रूद्र वीणा के भेद वाला त्रितंत्री सारिकायुक्त थी।

आलाप्तिनी वीणा

संगीत रत्नाकर आदि कुछ प्राचीन ग्रन्थों में इस वीणा के विषय में जानकारी मिलती है। यह वीणा उंगलियों से बजाई जाती थी। इस वीणा में तीन तार होते थे तथा दो तुंबे लगे होते थे। इस वीणा का प्रचार अपने समय में काफी था।

विपञ्ची वीणा

आचार्य भरत द्वारा उल्लिखित वीणाओं में विचित्र वीणा का प्रमुख स्थान रहा है। इस वीणा का विकास वैदिक युग के बाद हुआ। स्वाति को "विपञ्ची वादक के रूप में याद किया जाता है। इस वीणा में नौ तन्त्रियां होती थीं। जिन पर क्रमशः षडज, ऋषभ गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद, काकली निषाद, तथा अन्तर गान्धार की स्थापना की जाती थी -

विपञ्च्यां नवतन्त्रीषु स्वरा : सप्त तथा परौ ।
काकल्यन्तरसंज्ञौ च द्वौ स्वराः विस्मयानि च ।।[1]

विपञ्ची वीणा का वादन उंगली से करते थे जिस कारण ये स्वर मण्डल से मिलती थी । इसे कोण से भी बजाते थे कोण से बजाये जाने पर इसकी ध्वनि कानून या आधुनिक सन्तूर से मिलती थी । बाद में इस वीणा का लोप हो गया ।

पिनाकी वीणा

पिनाकी वीणा आकार में धनुष से मिलती जुलती थी । इस वीणा को धनुषाकार गज से बजाते थे। इसमें तुंबे लगा होता था । बाह्य आकृति में यह किन्नरी वीणा से मिलती जुलती थी । यह एक प्राचीन कालीन वीणा है ।

---

1 कालीदास साहित्य एवं संगीत कला ।डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ।, पृष्ठ 120.

मत्तकोकिला वीणा

समस्त वीणाओं में प्रमुख स्थान रखने वाली इस वीणा का उल्लेख शारंगदेव ने अपने संगीत रत्नाकर में किया है। यह महती वीणा से मिलती जुलती है। लोक में मत्तकोकिला को स्वर मण्डल कहा जाता है। स्वर मण्डल का वादन स्वतंत्र नहीं होता था इसे गायन के साथ स्वर के लिए छेड़ा जाता था। महती से मत्त-कोकिला वीणा हुयी बाद में यही स्वर मण्डल के रूप में प्रचलित हुयी।

तुम्बरू वीणा

तुम्बरू वीणा का वर्तमान स्वरूप तेरहवीं शताब्दी के बाद का है। तम्बूरे का प्रयोग गान की संगति के लिये होता है। पहले जो स्थान वीणा का था वही आज तम्बूरे का है क्योंकि वीणा का प्रयोग भी पहले स्वतंत्र वादन के लिये नहीं होता था केवल गान की संगति के लिए होता था लेकिन आज वीणा का स्वतंत्र वादन होने लगा है। उसका स्थान तम्बूरे ने ले लिया है। यह एक नवीन वाद्य है। इसका प्रयोग गान की संगति के लिए ही होने लगा है।

विचित्र वीणा ।

प्राचीन समय में जो ब्राह्म वीणा , घोषिका, घोषवती, एकतंत्री आदि के नाम से जानते थे उसी को आज विचित्र वीणा या बट्टा बीन कहा जाता है । आधुनिक समय में काफी परिवर्तन के साथ यह वीणा प्रचार में आयी । बीच में रूद्र वीणा तथा रबाब के प्रभाव के कारण इसका प्रभाव कम हो गया था किन्तु फिर धीरे-धीरे इसका प्रभाव बढ़ा है और लोगों की रूचि इसकी ओर जाग्रत हुयी समान्य रूप से देखने पर लगता है जैसे रूद्र वीणा से केवल परदे निकाल दिये गये हों और सब वैसे ही हो, किन्तु सूक्ष्म रूप से देखने पर इसकी बनावट सीधी सादी है । इसके मुख्य अंग दण्ड और तुम्बा है ।

इसके वादन के लिए वामहस्त में एक अण्डाकार शीशे का एक गोला इस प्रकार पकड़ते हैं जिससे उसका निचला भाग स्वरों को स्पर्श कर सकें तथा बिना किसी रूकावट के आगे पीछे खिसकाया जा सके । इस शीशे को बट्टा कहते. है ।

दक्षिण हस्त की तर्जनी, मध्यमा तथा कनिष्ठा से

---

1 चित्र नं0 7 व 8 पृष्ठ सं0 357 पर अंकित है.

मिजराब धारण करते हैं। जिससे तारों का वादन करते है। कुछ लोग कनिष्ठा में मिजराब की जगह नख से वादन करते है शेष दो अंगुलियों में मिजराब पहनते हैं। इस वीणा के अन्वेषक पटियाले के स्वर्गीय अब्दुल अजीज खॉं को ही मानते है। इस विचित्र बीन की उन्होंने ही प्रचार किया। यह वाद्य भी हिन्दुस्तानी संगीत परम्परा के अन्तर्गत है और इस पर हिन्दुस्तानी संगीत की वीणा की ही रागें भी बजायी जाती हैं। अब्दुल अजीज के शिष्यों में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के श्री लालमनी मिश्र भी इस बीन को बड़ी ही कुशलता से बजाते थे और अपनी विचित्र बीन का प्रसारण रेडियो से भी करते थे।

गोट्टुवाद्यम या महानाटक वीणा[1]

यह कर्नाटकीय पद्धति में प्रचलित वाद्य है। कर्नाटक में गोट्टुवाद्य तथा शेष भारत में विचित्र वीणा या बट्टा बीन एकतंत्री वीणा के ही विकसित रूप हैं। आकार में यह तंजोरी वीणा के समान है। तंजोरी वीणा में परदे हटा देने से गोट्टुवाद्यम का स्वरूप नजर आता है। इसमें सारणा अंगुलियों से नहीं की जाती बल्कि एक लकड़ी के

---

1 चित्र नं0 9 पृष्ठ सं0 358 पर अंकित है.

टुकड़े से तंत्री को दबाकर स्वरों का उत्पादन करते हैं। यह आबनूस की लकड़ी का बना होता है।

दक्षिणात्य या तंजोरी वीणा

संगीत रत्नाकर के काल में प्रचलित किन्नरी वीणा का प्रचार दो भिन्न रूपों में हुआ है। एक तो उत्तर भारतीय रूद्र वीणा तथा दूसरी दक्षिण भारतीय तंजोरी वीणा। इस प्रकार लगभग तेरहवी एवं चौदहवीं शताब्दी से लेकर आज तक सर्वश्रेष्ठ वाद्यों के रूप में विद्यमान है। रूद्र वीणा को तानसेन के वंशजों ने अपनाकर सरस्वती वीणा कहना प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि बाह्य रूप में देखने पर तंजोरी वीणा सरस्वती वीणा से भिन्न अवश्य थी किन्तु तत्वतः तंजोरी वीणा और सरस्वती वीणा एक ही हैं। इन दोनों ही वाद्यों में काफी समानता देखने को मिलती है। एक तो दोनों में मुख्य तारों की व्यवस्था तथा चिकारी की व्यवस्था तथा परदों की संख्या यह सभी चीजें दोनों में एक जैसी थी। तंजोरी वीणा के रूप का विकास लगभग 1936 से विजयनगर के महामंत्री श्री माध्वाचार्य (विद्यारण्य) के काल से हुआ।

<u>कच्छपी वीणा</u>

महर्षि भरत ने तत वाद्यों के अंग [मुख्य] तथा प्रत्यंग [सहायक] वाद्यों के विवेचन में कच्छपी वीणा को प्रत्यंग वाद्य कहा है।[1] सुधाकलश तथा विद्याविलासी पंडित ने इसे सरस्वती की वीणा बतलाया है "सरस्वत्यास्तु कच्छपी"।[2]

लगभग बीसवीं शताब्दी में सितार का विकास होने लगा था तरफ की व्यवस्था का प्रारम्भ तथा तुम्बों का प्रयोग दो रूपों में होने लगा था एक चपटी तुम्बी लगती थी तथा दूसरी गोल तुंबी लगती थी। यद्यपि दोनों सितार कहलाते थे किन्तु चपटी तुम्बी का आकार कछुए की पीठ से मिलता जुलता था इस कारण इसे कच्छपी वीणा कहा जाने लगा। इस कच्छपी वीणा का प्रचार लगभग 1950 तक ही रहा था। प्राचीन गुफाओं

---

1 भारतीय संगीत वाद्य [डॅा0 लाल मणि मिश्र,] पृ. 36 .

2 कालीदास साहित्य एवं वादन कला [डॅा0 सुषमा कुलश्रेष्ठ],

तथा मन्दिरों में इसके चित्र दिखाई देते है। इस वीणा में दो तार होते है तथा दोनों हाथों की उंगलियों से वादन होता है।

<u>सितार</u>[1]

आधुनिक समय में सर्वाधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय वाद्य सितार ही है। यह वाद्य देखने में अति सुन्दर और बजने में मधुर है। वैसे तो सितार के आविष्कार के विषय में कई मत है। ऐसा कहा जाता है कि भारतीय त्रितंत्री वीणा का ही विकसित रूप आज का सितार है। और ऐसा भी माना जाता है कि यह एक पर्शियन वाद्य है। जो बाद में भारत आया है। सितार के लिए त्रितंत्री वीणा ने किन्नरी वीणा के परदों की व्यवस्था लेकर अपना रूप विकसित किया जो सितार के नाम से विख्यात हुआ। प्राचीन काल में त्रितंत्री नामक वाद्य प्रचलित था। मध्यकाल के मुस्लिम संगीतज्ञों ने संस्कृत शब्द त्रितंत्री के स्थान पर उसका फारसी समनार्थी सेहतार या "सहतार" बोलना प्रारम्भ हुआ। बाद में इसी में तारों की संख्या सात कर दी गयी।

ऐसा कहा जाता है कि सितार का आविष्कार

---

1 चित्र नं० 10 पृष्ठ सं० 358 पर अंकित है.

चौदहवीं शताब्दी में सुल्तान अलाउददीन खिलजी के मुख्य मंत्री अमीर खुसरो ने किया। परन्तु बाद के अन्वेषणों में 17 वीं शताब्दी के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय के मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में सदारंग तथा अदारंग रहते थे। जिनमें से सदारंग के छोटे भाई खुसरो खाँ को सितार का आविष्कारक मानते हैं। जो पहले तीन-तार वाले "सहतार" के नाम से जाना जाता था। उसी का परिष्कृत रूप आज सितार है।

प्रारम्भ में सरोद की तरह सितार भी वीणा पद्धति के अधीन था। सितार की मधुर झन्कार में स्वर लहरियां अति मनोरंजक होती है। उसको मिजराब से बजाया जाता है। सितार में तारों की व्यवस्था में मुख्य वादन तंत्री दक्षिण पार्श्व में थी और चिकारी के तार उठकर मुख्य घुड़च के वामपार्श्व में थे। इसके कारण ही सितार पर तानों, तोड़ों और झाले में तैयारी को केवल एक उंगली से उस स्तर तक पहुंचाना सम्भव हुआ जो पहले वाद्यों में तीन और चार उंगलियों के प्रयोग से भी सम्भव न हो सका था। अब आलाप चारी तथा तैयारी के लिए एक ही वाद्य सितार पर्याप्त है। आज देश में सितार के अनेक श्रेष्ठ कलाकार देश में मौजूद हैं।

सेहतार को सितार तथा सात तारों वाला वाद्य बनाने तथा उसके स्तर को ऊंचा उठाने का श्रेय तानसेन के वंशज अमृतसेन तथा उनके पुत्र निहालसेन को प्राप्त है और उसी वंश की पीढ़ी के अमीर खान नामक प्रसिद्ध तंत्रकार हुए जिनके नाम पर अमीरखानी बाज प्रचलित हुआ। जो आज दिल्ली बाज के नाम से प्रसिद्ध है। आज सितार एक विशेष स्थान बना चुका है।

सरोद [1]

भारतीय वाद्ययंत्रों में सरोद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सरोद की उत्पत्ति तो अरब से हुयी और वहॉ से अफगानिस्तान होता हुआ भारत में आया। "रबाब" की आकृति से इसकी आकृति मिलती है। "सरोद" शब्द की उत्पत्ति "शहरूद" अथवा "सरोद" शब्द से हुयी है जिसका अर्थ संगीत है। इसी "शहरूद" नाम को भारत में सरोद नाम से ग्रहण किया गया। सरोद या रबाब पहले मुसलमान बादशाहों को अधिक प्रिय था परन्तु आज-कल यह एक लोकप्रिय वाद्ययंत्र हो गया है। कुछ लोग इसे प्राचीन भारतीय शास्त्रीय वीणा का विवर्तित रूप मानते हैं। सुरसिंगार के समय तक तो वीणा और ध्रुपद

---

1 चित्र नं0 11 व 12 पृष्ठ सं0 359 पर अंकित है.

की प्राचीन शैली का पालन किया जाता था किन्तु सरोद ने सैद्धान्तिक रूप से वीणा की शैली का थोड़ा बहुत पालन किया था परन्तु व्यवहारिक संगीत के क्षेत्र में सरोद ने अपना अलग से बाज स्थापित किया है।

अरब का शहरूद और अफगानिस्तान का रबाब मिलकर ही भारत का सरोद बना है। आज भारत के कोने-कोने में सरोद का जो रूप प्रचलित है वह अफगानिस्तान के रबाब का परिष्कृत रूप ही है। कैप्टन विलर्ड तथा हकीम मोहम्मद करम इमाम (1856)[1] के समय तक सरोद का प्रादुर्भाव होते ही उसकी ध्वनि की विशेषता रबाब तथा सुरसिंगार का क्रमशः ह्रास होने लगा। इस प्रकार रबाब, सुरसिंगार तथा सरोद एक जाति के वाद्य यंत्र है जिनका जनक है प्राचीन भारतीय वाद्ययंत्र "चित्रावीणा"। आधुनिक युग के गुलाम अली खां (काबुल) ने इसके बाज का प्रचार किया था। रामपुर के फिदाहुसैन सरोदियों अपने जमाने के बेजोड़ प्रतिभाशील वादक थे।

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लाल मणि मिश्र), पृ. 117.

स्वर मण्डल*

शततंत्री वीणा की तरह इसमें सौ तार नही इक्कीस तार होते है। कल्लिनाथ ने "संगीत रत्नाकर" की टीका करते हुए लिखा है कि शारंगदेव द्वारा वर्णित मत्तकोकिला वीणा ही "स्वर मण्डल" है।[1] इसी का नाम "कात्यायनी वीणा" भी है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि कात्यायनी ऋषि ने इसका निर्माण किया था।

स्वर मण्डल में इक्कीस अथवा अट्ठाइस तार होते है। इसकी लम्बाई तीन फुट चौड़ाई डेढ़ फुट तथा ऊंचाई सात इंच होती है। इसका आकार पांच कोण का होता है। इसमें एक ओर लकड़ी की खूटियां लगी रहती है जो स्वर मिलाने के काम आती है। वर्तमान समय में लकड़ी की खूंटी नही लगाते हैं जो एक लोहे की चाभी से आसानी से घुमाई जा सकती है। ये कीलें एक-एक अंगुल के फांसले पर होती है। कुछ स्वर मण्डल

---

1 भारतीय संगीत वाद्य [डॉ० लाल मणि मिश्र], पृष्ठ 61.

* चित्र नं० 15 व 16 पृष्ठ सं० 361 पर अंकित है.

में प्रत्येक तार में मनका पिरो देते हैं ताकि स्वर के सूक्ष्म अन्तर को बिना खूंटी घुमाए मनका के द्वारा मिलाया जा सके ।

आज विभिन्न आकृतियों के स्वर मण्डल बन रहे हैं किन्तु सभी का कार्य एक सा ही है । स्वर मण्डल को ही यंत्रिक रूप देकर प्यानो नाम का वाद्य की रचना की गई है । जो एक अत्यन्त प्रसिद्ध योरोपीय वाद्य है ।

सारंगी [1]

सारंगी पर्याप्त जटिल एवं विकसित वाद्य है । इस वाद्य को न अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है और न विशुद्ध तंत्र वाद्यों की श्रेणी में ही गणना की जा सकती है । सामान्यतः तंत्र वाद्यों को तुम्बे लौकी अथवा कद्दू के बनाये जाते है परन्तु सारंगी की तुम्बी पर खाल मढी होती है । दूसरी ओर अवनद्ध वाद्यों पर तार नही लगाये जाते है । परन्तु सारंगी एक तंत्र वाद्य हैं । अतः सारंगी को ततानद्ध वाद्य भी कहा जाता है। सारंगी जैसे वाद्यों का प्रचलन तंत्र तथा अवनद्ध वाद्यों के पश्चात् हुआ होगा । अन्य वाद्यों की भाँति सारंगी को

---

1 चित्र नं0 1 पृष्ठ सं0 355 पर अंकित है.

भी वर्तमान रूप लेने में कई शताब्दियों की लम्बी यात्रा करनी पड़ी होगी ।

तंत्र वाद्यों का इतिहास सारंगी का भी स्रोत है । प्राचीन काल में स्वर प्रधान सभी वाद्यों को वीणा ही कहा जाता था चाहे मिजराब अथवा कोण से बजाये जाते हैं अथवा गज से यही नही तूण व सुनादी "पुंगी", नाग स्वरम्, वेणु जैसे सुषिर वाद्यों को मुख से फूंक कर बजाये जाने के कारण "मुख वीणा" कहा जाता था। ऐसी स्थिति में तंत्र वाद्यों का इतिहास और भी महत्वपूर्ण हो जाता है संभव है किसी वीणा के नाम से सारंगी का प्रचलन रहा हो । प्राचीन सारंगी के परिवेश में सारंगी को शलाका अथवा धनुष "कमानी" द्वारा बजायी जाने वाली सारिका विहीन वीणा कहा जा सकता है बनावट में शायद तन्तु पट्टिका के निकट ।

सारंगी गाने की आवाज के समान बजता है यदि कोई प्रवीण सारंगी वादक बजाता है तो मालूम होगा कि गला ही बोल रहा है । सारंगी बजाने में अत्यन्त कठिन वाद्य है । इसमें बहुत अधिक अभ्यास की भी आवश्यकता होती है । सारंगी को "रावणास्त्र" तथा

"रावणहस्त वीणा" भी कहते हैं। वैसे तो सारंगी के कई रूप वर्तमान समय में भी दिखाई देते हैं लेकिन मुख्य रूप से दो प्रकार की सारंगी मानी गयी है - एक बिना तरब वाली और दूसरी तरब वाली। बिना तरब वाली लोक संगीत में योगियों द्वारा प्रयोग में लायी जाती है। तथा दूसरी तरब वाली सारंगी गुणी लोगों द्वारा बजायी जाती है। प्रमुख सारंगी वादकों में मम्मन खां देहली के, तथा बुद्ध खां आगरा के तथा कलकत्ते के बरल खां और इन्दौर के शामीर खां प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक युग के संगीत के उत्थान और प्रचार में सारंगी का विशेष योगदान है। सारंगी एक ऐसा वाद्य है जो प्राचीन गायन परम्परा और आधुनिक गायन परम्परा से सम्बन्ध जोड़ता है।

तंत्र वाद्यों की बनावट

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक भारत में बहुत से वाद्य प्रचलित रहे हैं। संगीत में वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और किसी न किसी रूप में प्रयोग होता रहा है। प्राचीन काल से ही वाद्यों में उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग किया जाता रहा है जो प्रकृति द्वारा प्रदत्त है। परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया वैसे ही कृत्रिम वस्तुओं का प्रयोग बढ़ता गया। जैसे आज से हजारों वर्ष पूर्व बांसुरियों के निर्माण में मिट्टी, हड्डी तथा बांस आदि का ही प्रयोग होता था किन्तु क्रमशः वह लकड़ी और विभिन्न धातुओं जैसे पीतल, लोहा, चांदी और सोने आदि की बनने लगीं। इसके अतिरिक्त ताल यंत्र मिट्टी के बनते थे जो बाद में लकड़ी के बनने लगे और कुछ वाद्य यंत्र अन्य धातुओं के भी बनने लगे हैं तथा तत् वाद्यों का ढांचा लकड़ी का होता है जिसमें तुंबी, चमड़ा, अथवा पीतल कांसा आदि का प्रयोग भी किसी-किसी वाद्यों में होने लगा है।

वाद्यों के कम्पित पदार्थ अर्थात् वाद्यों में जिसे स्वरोत्पत्ति के लिए लगाते हैं जैसे सितार में तार, तथा

ढोलक आदि में चमड़ा वैदिक युग मे तत वाद्यो में दूर्वा तथा मूंज के तार प्रयुक्त किये जाते थे। फिर इसके स्थान पर बालों तथा चमड़े की तांत का प्रयोग हुआ, उसके पश्चात फौलाद, पीतल, तांबा आदि के तारों का प्रयोग आरम्भ हुआ। अतिरिक्त वर्तमान समय में कुछ पाश्चात्य वाद्यों में मन्द्र स्वरों की ध्वनि के लिए उन्हें अधिक गम्भीर बनाने के लिए बटे हुए तारों का प्रयोग होता है। मुख्य फौलाद के तारों के ऊपर चांदी का एक दूसरा तार विशेष विधि से लपेट दिया जाता है। जिससे उस तार की मोटाई बढ़ जाती है और वह अधिक गम्भीर नाद उत्पन्न करने में सक्षम हो जाता है। स्वतन्त्रता के समय में प्रचलित कुछ तंत्र वाद्यों की बनावट तथा रूप इस प्रकार से है।

<u>गोट्टुवाद्यम् या महानाटक वीणा</u>

यह कर्नाटक पद्धति में प्रचलित वाद्य है। इसमें अनुध्वनि के लिए सात तन्त्रियां दण्ड के ऊपर है। दाहिने हाथ की उंगली से तार प्रताड़ित किये जाते हैं। बाह्य आकार में तंजोरी वीणा की तरह है। तारणा उंगलियों से नही की जाती है अपितु एक लकड़ी के टुकड़े से तंत्री को दबाकर स्वर उत्पन्न किये जाते है। यह काष्ठ दण्ड

लम्बाई में तीन इंच है और इसका व्यास एक इंच हैं। यह आबनूस की लकड़ी का बना होता है।

दक्षिणात्य या तंजोरी वीणा [1]

इस वीणा में एक ही कद्दू है पर दाहिने सिरे में लकड़ी का घट दण्ड के साथ जोड़ दिया जाता है। एक ही लकड़ी में दण्ड और घट खुदा होता है। तब उसे एकाण्ड वीणा कहते हैं। कद्दू का स्थान बायीं ओर है। सारिकाएं 24 हैं। हरेक स्थान की 12 सारिकाएं हैं। मूल तन्त्रियां चार है और चिकारियां तीन है। चिकारियों का स्थान दण्ड के बाम पार्श्व में होता है। इन मूल तन्त्रियों पर मुक्तावस्था में मध्यषड्ज, अति मन्द्र पंचम बोलते हैं। चिकारियों पर मध्य स्थानीय षड्ज, पंचम और तार स्थानीय षड्ज बोलते हैं। तीनों चिकारियों और मूल तंत्रियों के पहली दो तंत्रियां तो लोहे की होती है तथा शेष दोनों मूल तन्त्रियाँ पीतल की होती है।

---

1 चित्र नं0 18 पृष्ठ सं0 362 पर अंकित है.

किन्नरी वीणा

मतंग ने सर्वप्रथम वीणा पर सारिकाओं की स्थापना की है और यही वीणा किन्नरी वीणा है समस्त सारिका युक्त वीणाओं में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत रत्नाकर के अनुसार इसके दो भेद है – लध्वी किन्नरी एवं बृहती किन्नरी। लध्वी किन्नरी वीणा की लम्बाई तीन बित्ता, पांच अंगुल तथा मोटाई पांच अंगुल की होती है। इसकी तन्त्री लौह निर्मित होती है। बृहती किन्नरी लध्वी से एक बित्ता अधिक लम्बी होती है। उसकी चौड़ाई भी लध्वी से एक अंगुल अधिक होती है। तंत्री इसमें स्नायु निर्मित होती है। इन दोनों प्रकार की किन्नरी वीणाओं में तीन तुम्ब होते हैं।

एकतंत्री वीणा

तेरहवीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य एकतंत्री वीणा है। कहते है कि इसमें केवल एक तार होने के कारण इसे एकतंत्री वीणा कहते है। कुछ प्राचीन ग्रन्थों में इसका वर्णन प्राप्त होता है। संगीत रत्नाकर के प्राप्त वर्णन के अनुसार एकतंत्री वीणा के दण्ड की लम्बाई तीन हस्त (54 इंच), दण्ड की परिधि या घेरे का माप एक

वितस्ति ‖बित्ता 9 इंच‖ होता था। दण्ड का छिद्र पूरी लम्बाई में $1^1/_2$ अंगुल ‖ $1^1/_8$ इंच ‖ व्यास का होता था। एक सिरे में 17 अंगुल की दूरी पर अलाबु ‖कद्दू‖ को बांधना होता था। दण्ड आबनूस की लकड़ी से बनाया जाता था। कद्दू का व्यास 60 अंगुल ‖45 इंच‖ होता था। दूसरे सिरे में ककुभ रहता था। ककुभ के ऊपर धातु निर्मित कछुए की पीठ के समान पत्रिका होती थी। कद्दू के ऊपर नागपाश सहित रस्सी बांधी जाती थी। तांत की तंत्री को नागपाश में बांधकर ककुभ के ऊपर की पत्रिका के ऊपर लाकर शङ्कु ‖खूंटी‖ से बांधा जाता था। तन्त्री और पत्रिका के बीच नाद सिद्धि के लिए वेणुरचित जीवा को रखा जाता था। सारिका न रखने के कारण इस वीणा में बाएं हाथ के अंगुष्ठ, कनिष्ठिका और मध्यमा पर वेणु निर्मित क्रमिका को धारण कर तर्जनी से आघात कर सारण किया जाता था। तन्त्री को उर्ध्वमुख करके और कद्दू को अधोमुख करके ककुभ को दाहिने पॉव पर रखकर कद्दू को कन्धे के ऊपर जीवा से एक वितस्ति ‖बित्ता‖ की दूरी पर उंगली से वादन किया जाता था।[1]

---

1 कालीदास साहित्य एवं संगीतकला ‖डॉ0 सुषमा कुलश्रेष्ठ‖, पृ. 108.

विचित्र वीणा

प्राचीन समय में समस्त तंत्र वाद्यों को ही वीणा कहा जाता था। तथा इस समय जिसे ब्रम्ह वीणा, घोषिका घोषवती, एकतंत्री वीणा कहते थे उसी को आजकल "विचित्र वीणा" अथवा "बट्टा बीन" कहा जाता है। मध्यकाल में इसको वादन की कठिनाई के कारण इसका प्रचार कम हो गया था किन्तु धीरे-धीरे अपने विकसित रूप के साथ वीणा का प्रचार आजकल फिर बढ़ गया। यद्यपि इसको जानने और बजाने वाले आज भी बहुत कम है। लेकिन समय के साथ-साथ इसकी ओर लोगों की रूचि अवश्य बढ़ेगी। इस वीणा की बनावट बहुत सीधी है। इसके ढांचे के मुख्य अंग दण्ड और तुम्बा ही है।

दण्ड

लगभग 50 इंच लम्बा 4-5 इंच चौड़ा एवं 2 इंच तक गहरा दण्ड जो शीशम, टीक आदि की लकड़ी का बनता है। इस समूचे दण्ड में तीन भाग होते है। पहले भाग में छः बड़ी खूंटियां लगती है। इसका ऊपरी दिखाई पड़ने वाला भाग 12" लम्बा होता है। इसके दोनों पार्श्व में तीन-तीन खूंटियां लगती है। यह भाग

नीचे से खुला रहता है। इसका एक छोर मुख्य दण्ड में प्रवेश करता है जहां उसे दण्ड के साथ मजबूती से जोड़ा जाता है। दूसरे छोर पर उसी दण्ड को लकड़ी से किसी पक्षी की आकृति बना दी जाती है। दूसरा भाग मुख्य दण्ड का भाग है। जो लगभग 36 इंच लम्बा होता है। इसके तीन चिकारियों की मुख्य खूंटियां दक्षिण पार्श्व में रहती है। इसके अतिरिक्त 11 से 15 तक तरफ के तारों की खूंटियां भी दक्षिण पार्श्व में रहती है। तरफों की व्यवस्था सितार के अनुरूप ही होती है। दण्ड के अन्त में "अटक" तथा "लंगोट" की व्यवस्था रहती है जिसमें तार फंसा दिये जाते हैं।

अटक तथा लंगोट से तीन इंच पीछे मुख्य तारों की घोड़ी रखी जाती है। इसके पास ही तरफों की छोटी घोड़ी रखी जाती है। समूचा दण्ड खोखला होता है। उसकी गहराई "दो" रखी जाती है। किन्तु जिस स्थान पर घोड़ियां रखी जाती है उसका कुछ फैलाव भी अधिक होता है तथा गहराई भी 3 या 3 " इंच तक बढ़ा देते है। जिससे स्वर के गूंज की सम्भावना बढ़ जाती है।

दण्ड का तीसरा भाग है मुख्य दण्ड के ऊपर की पट्टी, जिसे दण्ड को खोखला करने के बाद जोड़ दिया जाता है इस पट्टी के मध्य भाग में तरफों के लिए छिद्र बने होते है। जिनमें हड्डी की फुल्ली लगी रहती है। इन्हीं छिद्रों से तार दण्ड के अन्दर प्रवेश कर खूंटियों में बंधा रहता है। उपरोक्त घोड़ियाँ इस भाग के ऊपर रखी जाती हैं।

घोड़ियों के नीचे का भाग जिसे कुछ चौड़ा तथा अधिक गहरा किया जाता है, आकार किसी बड़ी चिड़ियां के पेट जैसा बना होता है तथा उस विशेष चिड़ियां के धड़ तथा उसके ऊपर का भाग अलग से एक लकड़ी का बना कर लगा दिया जाता है जिसे जब चाहे लगाया या निकाला जा सकता है। प्रायः इस कार्य के लिए मोर का आकार चुनते है।

तुम्बा

इस वीणा में दो समान आकार के तुम्बे लगाये जाते है। जो मुख्य दण्ड में वामपार्श्व से लगभग 12 इंच तथा दक्षिण पार्श्व से लगभग 8 इंच पर होते हैं। इसके तुम्बे लगभग 46 इंच व्यास के होते हैं। तुम्बे के

निचले भाग को, जो भूमि से स्पर्श करता है, लगभग 10 इंच के व्यास का काट देते हैं और उसके चारों ओर छोटे छोटे भुटके लगा देते हैं जिससे वीणा के दण्ड की मूंज उसके भूमि पर रखे रहने के बावजूद उन तुम्बों में प्रवेश कर उन छिद्रों से बाहर निकल सके। इन तुम्बों के ऊपरी भाग में लकड़ी का गुलू होता है जिसके बीच लकड़ी के सुन्दर पत्ते बने होते हैं। इस गुलू के ऊपरी भाग में पेंच की व्यवस्था रहती है जिसे दण्ड के छिद्रों में लगे हुए पेंच में डालकर घुमाकर तुम्बों को कस देते हैं।

<u>सजावट का काम</u>

इस वीणा के दण्ड तथा तुम्बों के ऊपर उसकी पट्टियों में हाथी दाँत, हड्डी अथवा सेलो लाइट के द्वारा बनी हुयी बेलों तथा फूल पत्तियों से सजावट का काम किया जाता है। दण्ड के दोनों पार्श्वों पर बनी चिड़ियों का काम भी अच्छा होता है।

अन्य सामग्री तार गहन

दण्ड के एक छोर पर घुड़च होती है तथा दूसरे पर तार गहन की व्यवस्था होती है। जिसके ऊपर बने हुए खांचों से मुख्य छह: खूंटियों के तार गुजरते है। मुख्य घुड़च तथा गहन की ऊंचाई समान होती है।

दाढ

इस वीणा में चिकारियों के पांच तार होते है। तीन दक्षिण पार्श्व में तथा दो वाम पार्श्व में अतएव इन चिकारियों के लिए दोनों पार्श्वों पर दाढ़े लगायी जाती है। जिनके ऊपर तार रखने के लिए खांचे बना देते हैं। तार खूंटियों से चलकर दाढ के ऊपर से होता हुआ घुड़च की ओर जाता है।

तार

इस वीणा में 10 अथवा 11 मुख्य खूंटियां तथा 11 से 15 तक तरफ की खूंटियां रहती हैं।

1. मध्यम का तार : यह तार इस्पात का होता है। इसकी मोटाई 3 या 4 नम्बर की होती है तथा इसे मध्य सप्तक के मध्यम से मिलाते हैं।

2. षडज के तार : यह तार इस्पात का होता है। इसकी मोटाई 6 या 7 नम्बर की होती है तथा इसे मध्य सप्तक के षडज में मिलाते हैं।

3. पंचम का तार : यह तार इस्पात का होता है। इस की मोटाई 8 या 9 नम्बर की होती है और इसे मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाते हैं।

4. षडज का तार : यह तार पीतल का होता है, इसकी मोटाई 21 या 22 नम्बर की होती है और इसे मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाते है।

5. पंचम का तार : यह तार पीतल का होता है इसकी मोटाई 18 या 19 नम्बर की होती है इसे अति मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाते हैं।

6. षडज का तार : यह तार भी पीतल का होता है, इसकी मोटाई 21 या 22 नम्बर की होती है तथा इसे मन्द्र सप्तक के षडज में मिलाया जाता है।

कुछ लोग इन मुख्य तारों को परिवर्तन करके इस प्रकार भी मिलाते हैं -

पहला तार - मन्द्र षडज में
दूसरा तार - मन्द्र पंचम में
तीसरा तार - मन्द्र षडज में
चौथा तार - अति मन्द्र पंचम में
पांचवा तार - अति मन्द्र षडज में
छठवां तार - मन्द्र षडज

इन स्वरों के अतिरिक्त दण्ड के मध्य क्षेत्र के वाम पार्श्व में तीन तथा दक्षिण पार्श्व में दो अथवा एक चिकारी के तार लगाये जाते हैं। वामपार्श्व की तीन खूंटियों में, जिसमें सबसे लम्बा तार लगता है, उस के तार को मध्य सप्तक के षडज में मिलाया जाता है। मध्य खूंटी के तार को तार षडज में मिलाया जाता है तथा सबसे छोटे तार वाली खूंटी में अति तार षडज बोलता है इस प्रकार इनके चढ़ाने वाले तारों की मोटाई क्रमशः 4, 2 और । नम्बरों की होती है।

दक्षिण पार्श्व में स्थित एक अथवा दोनों चिकारी की खूंटियों के तार, तार षडज में मिलाये जाते हैं। इन तारों की मोटाई प्रायः 2 नम्बर की होती है।

इन मुख्य तारों के अतिरिक्त दण्ड के वाम पार्श्व

में स्थित तरफ की खूंटियों में 2, । तथा । शून्य की मोटाई के तार लगाये जाते हैं जिन्हें वादन के पूर्व राग विशेष के स्वरों के अनुसार मिला लिया जाता है ।

सितार

सितार तो वैसे दो प्रकार के होते है एक सादा सितार जिसमें तरफ के तार नही होते थे एक तरफदार सितार होते है । इनमें मुख्य तारों के नीचे तरफ के तार भी होते है । यह सितार सादे सितार की तुलना में कुछ बड़ा होता है ।

दण्ड

यह सितार का मुख्य भाग होता है । इसकी लम्बाई लगभग 34 " तथा चौड़ाई लगभग $3^1/_2$ " होती है । इसमें परदे बंधे होते है । दण्ड के लिए टीक या शीशम को अच्छा समझा जाता था दण्ड का ऊपरी भाग जिस ओर तांत का बंधाव रहता है, दोनों लकड़ी के अलग-अलग हिस्से होते है जिसे तराश कर जोड़ दिया जाता है । लकड़ी के निचले भाग को इस प्रकार तराशते है कि उसका बाहरी भाग अर्धचन्द्राकार बन जाए तथा भीतरी

भाग को नाली के रूप में तराशते हैं जिसके कारण दण्ड खोखला हो जाता है। दण्ड के ऊपरी भाग को ढ़कने के लिए लकड़ी की पट्टी सादे सितार में तो सीधी सपाट होती है किन्तु तरफदार में इसे भी तराशते है जिससे तरफ के तार परदों के नीचे आसानी से लग सकें तथा अनुरणन कर सके।

<u>तबली</u>

दण्ड के नीचे तुम्बे को ढंकने के लिए लगभग साढ़े बारह से चौदह इंच चौड़ी होती है। इसकी तराश भीतर से होती है। तबली की बनावट जितनी अच्छी होगी उतनी ही उस सितार वाद्य की ध्वनि भी मधुर होगी। इसी के मध्य भाग में घुड़च रखी जाती है। जिस पर सभी तार होकर जाते हैं। तबली के ऊपर तराश कर भिन्न-भिन्न आकार की पत्तियों से सजावट का काम किया जाता है।

<u>तुम्बा</u>

सितार में जो गोलाकार भाग दण्ड से जुड़ा हुआ नीचे लगा रहता है उसे तुम्बा कहते हैं। यह अन्दर से

खोखला होता है। इसको एक ओर से काटकर इसके ऊपर तबली लगायी जाती है जिसके ऊपर से तार जाते हैं। तुम्बा आकार में जितना बड़ा होता है उतनी ही उसकी ध्वनि मधुर होती है।

गुलु

तुम्बा और डॉड को जोड़ने वाले लकड़ी के भाग को गुलु कहते हैं। यह गुलु तुम्बे के उस छोर में चिपकाया जाता है जिधर से उसका सम्बन्ध दण्ड से होता है। गुलु को पहले तुम्बे से जोड़ते हैं तथा फिर उसमें दण्ड का लगभग दो से ढाई इंच तक भाग डालकर ऊपर से तबली जोड़ देते हैं।

लंगोट

तबली और तुम्बे के नीचे एक चपटा सा पत्ते के आकार की लकड़ी का टुकड़ा जिस पर एक छोर से तार खूंटी पर बांधा जाता है तथा दूसरे छोर पर उनसे बांधा जाता है उसे लंगोट कहते हैं। यह लगभग $2^1/_2$ " चौड़ा लकड़ी का एक तिकोना हिस्सा होता है।

<u>खूंटियां</u>

खूंटियां शीशम या सागवान की लकड़ी की बनी होती हैं। इसमें सात बड़ी खूंटियां और ग्यारह छोटी खूंटियां लगायी जाती हैं। ये तारों को कसने और बांधने में काम आती है। बड़ी खूंटियों के सिरे गोल और छोटी खूंटियों के सिरे चपटे होते हैं। सात मुख्य तारों के लिए सात बड़ी खूंटियां होती हैं। इसमें से दो खूंटियां दण्ड की खूंटियों के निर्धारित क्षेत्र में सामने की ओर लगायी जाती है। तथा तीन खूंटियां दण्ड के उस किनारे पर लगायी जाती है जो सितार बनाते समय ऊपर की ओर रहते है। शेष मुख्य दो खूंटियां दण्ड के किनारे उस स्थान पर लगायी जाती हैं जहां परदे बंधे होते है।

<u>तार गहन, पचीसा तथा दाढ़</u>

इन तीनों का प्रयोग मुख्यत: इसलिए होता है कि घुड़च के स्तर पर तार उठे रह कर स्थिर रहे।

पचीसा हड्डी का बना हुआ है जिसके ऊपर छेद से तार निकलकर खूंटियों में प्रवेश करते हैं। इससे पौन इंच नीचे तार गहन के ऊपर से होते हुए तार घुड़च तक

जाते हैं ।

चिकारी की दो खूंटियाँ के जो दण्ड के उस क्षेत्र में होती है जहां परदे बंधे होते है तारों को घुड़च के स्तर पर लाने के लिए दो अलग-अलग हड्डियों की कीलें उनसे कुछ आगे दण्ड के किनारे खड़ी की जाती है ये दाढ कहलाती है ।

घुड़च

यह तबली के ऊपर रखी जाती है इसके ऊपर से तार जाते हैं । यह हाथी दांत की बनी होती है । इसमें निश्चित स्थान पर तारों के जाने के लिए निशान बने होते है । ये दो प्रकार की होती है । एक बड़ी होती है जो लकड़ी की घोड़ी होती है तथा इसमें से सात मुख्य तार रखे जाते है इसके नीचे आकार में इससे छोटी हाथी दांत की पट्टी रखी जाती है जिस पर तरब के तार जाते हैं ।

मनका

यह हाथी दांत या हड्डी की बनी मोती होती है।

जो सितार में बाज के तार में स्वर को शुद्ध रूप देने के लिए लगायी जाती है। इसको ऊपर नीचे करके स्वर मिलाये जाते है।

परदा या बन्द

जिस प्रकार हारमोनियम के परदे दबाने से स्वरों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार बन्द या परदे के बगल तार को दबाकर स्वर उत्पन्न करते है। ये पीतल के लगभग दो सूत मोटे तार ~~तार~~ के होते हैं। ये संख्या में 18 या 19 होते हैं। इनके दोनों किनारे पर खांचे बने रहते हैं। जिनको तांत की सहायता से दण्ड में बांधा जाता है। इन्हें कोमल करने के लिए रे, ध के परदे को ऊपर भी खिसका सकते है। ये बनावट में अर्धगोलाकार होते हैं।

तार

सितार में सात मुख्य तारों का प्रयोग होता है। जिनमें से पांच तार फौलाद की तथा दो तार पीतल के होते है। जिन्हें क्रमशः इस प्रकार मिलाते हैं।

1.	बाज का तार	मन्द्र मध्यम
2.	जोड़ी का तार	मन्द्र षडज
3.	जोड़ी का तार	मन्द्र षडज
4.	पंचम का तार	अति मन्द्र पंचम
5.	पंचम का तार	मन्द्र पंचम
6.	पपीहा का तार	मध्य षडज
7.	चिकारी का तार	तार षडज

इसके अतिरिक्त ग्यारह तरफ के तार होते है जो फौलाद के होते है ।

लगभग बीसवीं शताब्दी में सितार का विकास पूर्णतया होने लगा था । शताब्दी के पूर्वार्ध में तरफ के तारों की व्यवस्था प्रारम्भ हो चुकी थी । इसके अतिरिक्त दो प्रकार की तुम्बी का प्रयोग होने लगा था। एक तो आकार में गोल होती थी दूसरी कुछ चपटी सी होती थी दोनों सितार कहलाती थी किन्तु चपटी तुम्बे के आकार के कारण कुछ लोग इसे कच्छपी वीणा भी कहने लगे थे जो लगभग 1950 तक ही रहा । इसके बाद आठ तन्त्रियों से युक्त सितार का ही प्रचार रहा । किन्तु धीरे-धीरे यह कम होता गया सन् 1940-45 के लगभग सितार में कुछ खास परिवर्तन हुए सितार का

आकार बड़ा होने लगा जिससे उसमें नाद की तारता, तीव्रता व गुण की दृष्टि से विकास हुआ इसके साथ ही सितार की तन्त्रियों को स्वर में मिलाने की व्यवस्था में परिवर्तन हुआ जिससे सुरबहार का आलाप जोड़, अब सितार में ही होने लगा साथ ही साथ गत की भी सुविधा सितार में ही होने जाने से सुरबहार का लोप हो गया और सितार अपने नवीन रूप के साथ कलाकारों का सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रिय वाद्य बन गया ।

सरोद

सरोद नामक तंत्र वाद्य अरब व अफगानिस्तान से होता हुआ भारत आया था । बाह्य आकार में यह "रबाब" से मिलता जुलता है । कुछ लोग तो इसे भारतीय शारदीय वीणा का विवर्तित रूप कहते हैं ।

लगभग 1 गज लकड़ी के टुकड़े को खोखला करके सरोद का निर्माण किया गया है । ढांचे के ऊपरी भाग में तारों के लिए खूंटियां लगायी जाती है । इसमें कोई सारिका नहीं होती है । खूंटियों वाला ऊपरी भाग 1 फुट से अधिक लम्बा तथा लगभग सात इंच व्यास का होता है । इसमें सारिका के स्थान पर लोहे की चादर चढ़ी

होती है। इसमें छह प्रधान तार तांत के व धातु निर्मित होते है तथा नौ से पन्द्रह तक तरब के तार होते है।

मध्य भाग लोहे चादर से युक्त होता था जहॉ वादन क्रिया होती है। लगभग 15-16 इंच तक का होता है तथा इसकी ऊपरी सतह की चौड़ाई मेरू के पास ढाई से पौने तीन इंच तक होते होते घोड़ी की ओर बढ़ती जाती है। और वहॉ साढ़े पांच इंच तक हो जाती है। मेरू के पास इसकी गहराई लगभग दो इंच तक हो जाती है। लकड़ी के खोल की यह गहराई क्रमशः बढ़ती जाती है। जो मेरू से सात इंच की दूरी तक 3 इंच की हो जाती है। उस के बाद पूरा ढांचा सात से साढ़े सात इंच तक गहरा हो जाता है यह समस्त ढांचा भीतर से खोखला रखा जाता है। ऊपरी सतह का मध्य क्षेत्र पत्तर से ढंका होता है। इसके नीचे के क्षेत्र में चमड़ा मढ़ा जाता है।

मध्य भाग में मेरू से लगभग साढ़े चार तथा साढ़े सात इंच हटकर क्रमशः दो खूंटियॉं लगायी जाती है। जिनमें चिकारी के तार लगाये जाते हैं। इन दोनों खूंटियों से एक इंच घुड़च की ओर हटकर एक दाढ लगायी जाती

है । जिसके ऊपर चिकारी के दोनों तार रखे जाते है । दाढ़ के स्थान से एक इंच और घुड़च की ओर हटकर तरफों की खूंटियों की व्यवस्था होती है । ये खूंटियां लगभग आठ इंच के क्षेत्र में ऊपर नीचे की दो पंक्तियों में लगायी जाती है । इन की संख्या प्रायः ग्यारह होती है । किसी किसी सरोद में यह संख्या पन्द्रह तक बढ़ जाती है । किसी-किसी सरोद में यह संख्या पन्द्रह तक बढ़ जाती है । ये सभी खूंटियां दक्षिण पार्श्व में लगायी जाती है जो लगभग साढ़े पांच इंच लम्बी होती है सरोद के मध्य भाग की चौड़ाई मेरू से घुड़च की ओर क्रमशः बढ़ती जाती है । अतएव इस क्षेत्र की खूंटियों को लगाने की व्यवस्था अन्य वाद्यों की तरह नही होती है । क्योंकि खूंटियों को स्थिर रखने के लिए उन्हें दो स्थानों से पकड़ने की आवश्यकता होती है। अतएव सरोद के मध्य क्षेत्र में खोखले भाग में खूंटियों के दूसरे छोर पर पकड़कर रखने हेतु एक लकड़ी की पट्टी जोड़ी जाती है । जिसमें इस प्रकार छिद्र बना दिये जाते है जिसमें दक्षिण पार्श्व में प्रवेश कराई गयी खूंटी का दूसरा छोर उस लकड़ी में प्रवेश कर सके । इस प्रकार मध्य क्षेत्र की चौड़ाई क्रमशः बढ़ते हुए की खूंटियां एक साथ की बनायी जा सकीं। तरफ की खूंटियों में तार

भीतर की ओर रहते है। लोहे की चद्दर में उनके बाहर निकलने के लिए बने छिद्रों से निकलकर घुड़च की ओर आ जाते हैं। इन छिद्रों में दो सूत उठी हुयी फुल्लियां लगी रहती है जो तार गहन एवं मेरू का काम करती है सामान्य रूप से सरोद में तरफों की व्यवस्था सितार के अनुरूप ही होती है। ढांचे का निचला भाग, जहां चमड़ा मढ़ा जाता है, लगभग 9 इंच परिधि का होता है। यहां पतला कमाया हुआ चमड़ा लगाया जाता है। इस चमड़े के ऊपर लंगोट से तीन इंच मेरू की ओर हटकर घुड़च रखी जाती है। यह घुड़च लगभग तीन इंच लम्बी तथा पौन इंच ऊंची हड्डी की बनी होती है। मुख्य बाज के तार छेड़ के तार तथा चिकारी के तार घुड़च के ऊपर से होकर गुजरते हैं। तथा तरफ के तारों को उसके नीचे से अलग-अलग छिद्र बनाकर निकालते है। सरोद में लंगोट 4 इंच चौड़ा एक लोहे का टुकड़ा पत्र जिसमें तार अटकाने के लिए छोटी-छोटी फुल्लीदार आठ कीलें लगी रहती है, पेंचदार कीलों से जड़ दिया जाता है। इस व्यवस्था से लंगोट में मजबूती अपेक्षाकृत अधिक हो गई है। सरोद में मुख्य तारों के लिए एक तार गहन लगा होता है जो मेरू का काम करता है। इसमें सजावट का काम थोड़ा कम ही होता है।

सारंगी

सारंगी एक वितत श्रेणी का वाद्ययंत्र है इसे रावणास्त्र तथा रावणहस्त वीणा भी कहते हैं। यह लगभग दो फुट लम्बी होती है। इसमें तुम्बे के स्थान पर लकड़ी का बना हुआ पेट होता है जो नीचे से चिपटा तथा ऊपर से डमरू के आकार का होता है। वह लकड़ी को खोदकर बनाया जाता है तथा चमड़े से मढ़ दिया जाता है। इस पेट के मध्य में घुड़च लगायी जाती है। पेट के नीचे से आकर चार तांत घुड़च पर होते हुए खूंटियों पर ऊपर चली जाती है। इसको कमान की सहायता से बजाया जाता है। बाएं हाथ की उंगलियों के नखों से तांत को पार्श्व से स्पर्शकर इच्छानुसार स्वर उत्पन्न करते हैं। इसमें परदे नहीं होते, केवल अभ्यास से ही स्वर उत्पन्न किये जाते हैं।

सारंगी में तरब की ग्यारह खूंटियां सामने मस्तक पर रहती है तथा दक्षिण पार्श्व में तरब की चौबीस खूंटियां होती हैं। इनमें से कुछ लोहे के तथा कुछ पीतल के तार चढ़े होते हैं। मस्तक पर तरब के तारों की जो खूंटियां होती है उनके लिए मेरू के पास ही छोटी-छोटी दो घुड़च रहती है जिन पर होकर उक्त ॥ तार नीचे आते हैं।

सुर सिंगार।

इसकी परिकल्पना रबाब से की गयी है। रबाब में जिस स्थान पर घुड़च रखी जाती है उस स्थान पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसी चमड़े के स्थान पर सुरबहार अथवा सितार के समान लकड़ी की तबली लगा देते है। इससे उसकी ध्वनि तथा बनावट में जो अन्तर आया इसके कारण उसका नाम सुर सिंगार रखा गया। इसके साथ ही इसमें लोहे व पीतल के तार चढ़ाये गये। बजाने के स्थान पर दण्ड में लोहे की चमकीली चादर चिपका दी। इस प्रकार बाहरी रूप से रबाब के ही समान था, किन्तु ध्वनि तथा गूंज आदि गुण के कारण यह सुर सिंगार नाम से प्रचलित हुआ।

वायलिन

वितत श्रेणी वाद्य बेला अथवा वायलिन लगभग डेढ़ दो फुट लम्बी काठ से बना होता है। इसमें भी सारिकाएं नही होती हैं। जिनको यथाक्रम से मन्द्र पंचम या मन्द्र मध्यम, मन्द्र षडज, मध्यम पंचम एवं तार ऋषभ सुर में मिलाते हैं। बायें हाथ की उंगली से तार दबाकर दाहिने हाथ में छड़ी लेकर उसे बजाया जाता है।

---

1 चित्र नं0 17 पृष्ठ सं0 362 पर अंकित है.

बेला के विभिन्न अंगों के पाश्चात्य नाम इस प्रकार है : -

1. सुर गूंजन में सहायताकारी मध्यवर्ती मुख्य अंश को बेली कहते हैं ।
2. बेली के चारों ओर के अंश को रिब्स या साइड्स कहते है ।
3. जहां खूंटियां नही गड़ी रहती हैं । उस अंश को नीक कहते है ।
4. खूंटियों को पेगस् कहते हैं ।
5. यन्त्र शीर्ष के प्रांत भाग को हेड या स्क्राल कहते है ।
6. सवारी को ब्रीज कहते है ।
7. लंगोट को टैल पीस कहते है ।

<u>शन्तूर</u>[1]

शन्तूर की बनावट स्वर मण्डल के समान होती है । स्वर मण्डल का प्रयोग गाते समय उसके तारों की उंगलियों से छेड़ कर किया जाता है । जबकि शन्तूर का वादन मुड़ी हुयी डण्डियों से गाने की संगति अथवा स्वतन्त्र रूप

---

1 चित्र नं0 14 पृष्ठ सं0 360 पर अंकित है.

से गत बजाने के लिए होता है। शन्तूर बनाने के लिए सर्वप्रथम लगभग चार इंच चौड़ी तथा आधा इंच मोटी वाद्यों में लगने वाली लकड़ी की चार पट्टियां बनाकर उन्हें खड़ा कर चारों ओर से एक दूसरे से जड़ देते हैं। इसमें मन्द्र स्वरों की ओर जो पट्टी बनायी जाती है वह लगभग दो फुट लम्बी तथा तार स्वरों की ओर जो पट्टी बनायी जाती है वह लगभग तेरह इंच की होती है। आगे पीछे की इन पट्टियों के अतिरिक्त दायें बाएं की पट्टियां एक माप की होती है। जिनकी लम्बाई लगभग साढ़े इक्कीस इंच की होती है। इन्ही पट्टियों में तार बांधने और तार फंसाने की खूंटियां लगायी जाती है। इस प्रकार चारों पट्टियों से बने हुए ढांचों के ऊपर तथा नीचे प्लाईवुड [एक प्रकार की लकड़ी] की तरह की विशेष कश्मीरी लकड़ी से ऊपर तथा नीचे की ओर मजबूती से ढंक लेते है। ऊपर की ओर वाम तथा दक्षिण पार्श्व में पौन इंच मोटी तथा एक इंच ऊंची अतिरिक्त लकड़ी की पट्टी लगायी जाती है। जिसके मध्य में हड्डी अथवा लोहे की रेखानुमा पत्ती जड़ दी जाती है जो लकड़ी से कुछ ऊपर निकली हुयी होती है। इसी के ऊपर से होकर तार गुजरते हैं। यह लकड़ी की पट्टी तथा उसके ऊपर साधारण रूप से उठी हुयी हड्डी अथवा लोहे की रेखानुमा

पत्ती मेरू का काम करती है। खूंटियों के स्थान पर इसमें लोहे की पहलदार ऐसी कीले लगायी जाती है जो घुमावदार होती है। इसमें तार फंसाने के लिए एक छिद्र होता है। जिसमें तार को फंसा कर खूंटियों को घुमाने के लिए बनी लोहे की चाबी से घुमाकर लपेट दिया जाता है। इसमें सौ खूंटियां लगायी जाती है। जो सभी दक्षिण पार्श्व में ऊपर नीचे चार-चार की पंक्तियों में बनी होती है। वर्तमान समय में कुछ ऐसे भी शन्तूर बनने लगे हैं, जिनमें पचहत्तर अथवा पचास खूंटियां ही लगायी जाती है। इस प्रकार खूंटियों की पंक्तियां तीन-तीन अथवा दो-दो की रखी जाती है।

जिस शन्तूर में एक सौ खूंटियां तथा तन्त्रियां होती है उसमें प्रत्येक स्वर के लिए चार-चार तार होते हैं। यदि तन्त्रियां पचहत्तर होती है तो प्रत्येक स्वर के लिए तीन-तीन तथा पचास होती है तो दो-दो तन्त्रियां होती है।

एक स्वर के दो या अधिक तारों को एकत्र करने के लिए पचीस छोटे-छोटे लकड़ी के मेरू बनाये जाते है। जो तेरह की संख्या में दक्षिण तथा वाम पार्श्व में मेरू से लगभग पांच इंच भीतर की ओर लगाते है इन छोटे मेरूओं का रूप शतरंज के ऊंट अथवा घोड़े के मोहरे के

समान होते है। जिसके ऊपर कोई कलश आदि का आकार न होकर मेरू के योग्य समतल बनाकर उस पर हड्डी की अत्यन्त सूक्ष्म नली बैठा देते है। इस नली में तारों की संख्या के अनुसार खांचे बने होते है जिनमें तार आसानी से बैठ जाते है तथा वादन के समय अपना स्थान नही छोड़ते है।

शन्तूर का वादन आगे से ऊपर की ओर मुड़ी हुयी दो पतली तथा हल्की डण्डियों से होता है। जिनकी मोटाई सामान्य पेंसिल से भी कम होती है।

तंत्र वाद्यों की वादन सामग्री

प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक भारतवर्ष में बहुत से तंत्री वाद्य प्रचार में आये और कई वाद्यों का तो अस्तित्व ही स्वतन्त्रता के समय तक समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त कुछ नवीन वाद्य अपने परिष्कृत रूप में आये। सबसे प्राचीन वाद्य वीणा का प्रयोग गान के लिए ही होता और उसका स्वतन्त्र वादन यदि होता भी था तो उसमें गान के विधि विधानों का ही प्राबल्य होता था इसके पश्चात् लगभग उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में वाद्यों

की गत नामक एक नवीन शैली का आविर्भाव हुआ और वाद्यों का स्वतन्त्र अस्तित्व सामने आया। वाद्य गान के प्रभाव से मुक्त हो गये। वर्तमान समय के वाद्यों को वादन सामग्री की दृष्टि से तीन वर्गों में रखा गया है।

1. जिसमें मध्यकालीन गान शैलियों का वादन होता था। इसमें मुख्यतः जो वाद्य आयेंगे उनमें रूद्र वीणा, तंजोरी वीणा, आदि मुख्य रूप से आयेंगे।

2. दूसरे वर्ग में वे वाद्य आ जायेंगे जिनका प्रयोग गान की संगति के लिए होता था। इसमें मुख्यतः सारंगी, तम्बूरा, वंशी, इसराज, दिलरूबा, स्वर मण्डल आदि आयेंगे।

3. जिन वाद्यों का वादन गत की शैली के निमित्त होता है तथा ये वाद्य गाने के प्रभाव से मुक्त स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। इसमें सितार सरोद सन्तूर आदि आयेंगे।

वर्तमान समय के सितार और सरोद आदि ऐसे प्रचलित तंत्र वाद्य है कि इसमें कलाकार को काफी कुछ कर सकने की छूट है। इसमें वादक बहुत सी सामग्री की रचना कर सकता है जैसे - कण, मुर्की, जमजमा, कृन्तन, घसीट, मींड़,

गमक के अनेक प्रकार, झाला के अनेक प्रकार, विभिन्न तालों में गतें आदि सभी इन तंत्र वाद्यों में उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही तोड़ो को विभिन्न रूप देकर बजाया जाता है तथा आलाप को जोड़, झाला आदि के प्रयोग द्वारा आलाप को अधिक आकर्षक बनाया जा सकता है।

सितार को मिजराब की सहायता से बजाया जाता है तथा सरोद को जवा से बजाया जाता है। सितार के वादन के समय मिजराब को दाहिने हाथ की तर्जनी में पहनकर बाहर से अन्दर की ओर प्रहार करने पर दा तथा अन्दर से बाहर की ओर प्रहार करने पर रा निकलता है। जवा को सरोद वादन के समय चुटकी में पकड़कर वादन करते हैं।

इन बोलों के कई रूप बनते हैं -

1 दारा - दो मात्रा
2 दिर - एक मात्रा
3 दार - डेढ़ मात्रा

इसके साथ ही अवग्रह का प्रयोग करके मात्रा बढ़ाया जाता है। जैसे - दा-रा- या दाऽ राऽ आदि। इस प्रकार इन्हीं बोलों को मात्राओं में बांधकर अलंकार बजाया

जाता है जिसके अभ्यास से सितार बजाने में कुशलता प्राप्त की जा सकती है। अलंकार भी दो तरह के होते हैं कुछ तो सादे सपाट प्रयोग किये जाते, दूसरे वह जिसमें मिजराब के खास स्ट्रोक या प्रहार के आधार पर बनते हैं।

जैसे

स रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सं।
सं नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे स।

यह तो सादे अलंकार है इसके अतिरिक्त जिसमें मिजराब के द्वारा कुछ खास बोल प्रयोग किया जाता है। जैसे -

स रेरे गग स -स रे रे ग म, रे गग मम रे -रे गग म प, आदि।

वाद्यों में गत को प्रारम्भ करने से पूर्व उस राग विशेष का आलाप बजाया जाता है। जिसको बजाने से प्रस्तुत की जाने वाली राग स्पष्ट हो जाती है। आलाप में यद्यपि मात्राओं की निश्चितता नही रहती है किन्तु इसमें एक विशेष गति होती है तथा यह ध्यान रखना होता है कि स्वरों में आपसी सम्बन्ध टूटना नही चाहिए। मींड खींचते समय बिना स्वर टूटे ही दूसरे स्वर पर पहुंच जाये। इसमें राग के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सरल स्वर समूहों द्वारा प्रस्तुति की जाती है। आलाप करते

समय पहले स्वरों का विस्तार मन्द्र सप्तक में करते हैं फिर मध्य में तत्पश्चात तार सप्तक में करते है। एक सप्तक से दूसरे सप्तक में जाने पर कुछ निश्चित स्वर समूहों का प्रयोग करते है तथा सम दिखाते है जैसे यमन राग में "सनि़ धनि़ रे स" इसके अतिरिक्त राग के विशेष स्वर पर बीच-बीच में न्यास करते हैं। जब तीनों सप्तकों पर राग का स्वरूप स्पष्ट कर लेते हैं तब राग में जोड़ आलाप बजाते हैं। जोड़ में स्वर समूहों की परस्पर योजना का प्रयोग बड़ी कुशलता से बार-बार प्रयोग किया जाता है। जोड़ की लय क्रमशः बढ़ती जाती है और अन्त में इसमें तान तथा तोड़ो का प्रयोग करते है। जोड़ आलाप में राग के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यह ज्ञान होना जरूरी है कि किस स्वर से किस स्वर को जोड़ने से राग स्पष्ट होगा। जोड़ आलाप मध्य लय में बजाते है तथा इसे मध्य सप्तक से प्रारम्भ करके बजाया जाता है। आलाप में सम दिखाने के लिए दा दा रा दा कहकर सम पर आते हैं। लेकिन जोड़ में दा S दा रा इतना टुकड़ा और बजाकर फिर दा दा रा दा बजाकर सम पर आते है। जोड़ आलाप में कुछ विद्वान बाद में झाला बजाते हैं। झाले में प्रत्येक स्वर के साथ एक या दो या तीन चिकारी का प्रयोग किया जाता है झाले को द्रुतलय में बजाया जाता है इसके पश्चात् गत बजायी जाती है।

सन् 1940-45 के लगभग सितार में मुख्य रूप से दो बाज ही प्रचलित थे- मसीतखानी और रजाखानी। ये अलग-अलग घरानों से सम्बन्धित थी तथा एक घराने का कलाकार दूसरे घराने की शैली का प्रयोग नही करता था ये घराने पछाहीं तथा पूरबी के नाम से जानी जाती थी, किन्तु ये परम्परा धीरे-धीरे खत्म हो गयी है और आज कलाकार पहले विलम्बित लय तथा उसके पश्चात् द्रुतगत का वादन एक साथ करने लगा।

समय के साथ-साथ गतों को तीन ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में गतों का प्रयोग होने लगा। द्रुतगत में मिजराब के निश्चित बोलों का बन्धन नही होता हैं इस कारण इसमें विविधता की जा सकती है। तीन तालों के अतिरिक्त जिन तालों में गतें बजायी जाती जा रही है वर्तमान में उनमें एकताल, रूपक, आड़ा चौताल, झपताल आदि मुख्य रूप से प्रचलित है।

पहले सितार पर धुन तथा ठुमरी का वादन नही होता था किन्तु आधुनिक समय में कुछ प्रमुख कलाकारों ने सितार में अपनी प्रतिभा दिखाते हुए धुन बजाने लगे हैं। जो आजकल अधिकतर लोग रजाखानी के बाद बजाने लगे हैं। ये गतें कुछ विशेष रागों में अधिकतर बजायी जाती हैं

जिनमें - पीलू, तिलक कामोद, काफी, भैरवी आदि मुख्य है जिस प्रकार मशीतखानी गत में बोल एक निश्चित रूप से रहते हैं। उसी तरह इसमें भी निश्चित बोल का ही प्रयोग करते हैं जैसे -

दिर दिर दा -दा -र दा रा -दा -र दा दा -रा -दा रा

इसके साथ ही गतों के पहले निश्चित मात्रा से प्रारम्भ करते थे किन्तु विकास के साथ-साथ विभिन्न प्रयोगों के आधार पर गतें विभिन्न मात्राओं से प्रारम्भ करने लगे हैं। प्रसिद्ध सितार वादक बिलायत खॉ ने मशीतखानी मिजराब को कायम रखते हुए गतों की ऐसी बन्दिश की है जिससे उसका प्रारम्भ बारहवीं मात्रा की अपेक्षा चौदहवीं मात्रा से होने लगा है जैसे[1] -

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लाल मणि मिश्र), पृ. 60.

राग सिन्दूरा त्रिताल ॥विलम्बित लय॥

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
													नि॒नि॒	प	ध
													दिर	दा	रा
सं	सं	सं	संरें	नि॒	धनि॒	^{प}ध	म	पग॒	रेमग॒रे	स	नि॒स	स			
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा			

सम से सम तक प्रारम्भ होने वाली खमाज की रजाखानी गत

स्थाई

×	2	0	3
नि संसं नि सं	- निनि ध प	नि संसं रेंरें , संसं	नि- निध -ध प
दा दिर दा रा	दिर दा रा	दा दिर दिर दिर	दा -रदा -र दा
ग रेरे ग ग	-ग म प ध	नि संसं रेंरें संसं	नि -निध -ध प
दा दिर दा रा	- दिर दा रा	दा दिर दिर दिर	दा- रदा -र दा

अन्तरा

×	2	0	3
म मग म ध	- धनि सं सं	ध निनि संसं रेंरें	नि -नि ध- पध
दा दिर दा रा	- दिर दा रा	दा दिर दिर दिर	दा- रदा - रदा
सं रेंरें सं नि	- निध प ध	ग मम पप धध	म- मग -रे ग
दा दिर दा रा	- दिर दा रा	दा दिर दिर दिर	दा- रदा - रदा

चौथी मात्रा से प्रारम्भ होने वाली श्री राग रजाखानी गत

×	2	0	3
पप	मैं धध मैंमैं गग	रे- रेस -स म	प -नि -नि स
दिर	दा दिर दिर दिर	दा- रदा -रा दा	रा -दा - र दा
× रे- स -	0 नि रेंरें निनि धध	0 प- पमैं -मैं प	3 मैंध ध पप धध
दा- दा -	दा दिर दिर दिर	दा- रदा - रदा	दा दिर दिर दिर
× मैं -प -प मैं	0 रे -ग -ग रे	स -रे -रे स	× स पप मैंमैं गग
दा दा -र दा	दा -दा -रा दा	दा -दा -रा दा	दा दिर दिर दिर
× रे रेस -स पप	2 मैं धध मैंमैं गग	0 रे- रेस -स मैं	3 प- नि- नि स
दा रदा -रा दिर	दा दिर दिर दिर	दा -रदा -रा दा	रा -दा र दा

अन्तरा

x	2	0	3
रे मम पप नि	-सं सं रे सं	रें गंगं रेंरें गंगं	रें- रे सं -सं स
दा दिर दिर दा	-रा दा दा रा	दा दिर दिर दिर	दा- र दा - रा दा
ध -मै - ग	रें सं रें - नि	-धा प म	ध -मै - ग
दा -दा - रा	दा रा दा - दा	- रा दा रा	दा -दा - रा
रे स -पप	मै धध मैमै गग	रे रेस -स मे	प -नि -नि सं
दा रा - दिर	दा दिर दिर दिर	दा रदा -रा दा	रा -दा - रा दा

सातवीं मात्रा से प्रारम्भ होने वाली पूरिया धनाश्री रजाखानी गत

स्थाई

	0	3	×	2
गग मैमै	ग- गरे -रे म	नि रेरे ग म	प -ध पप	मै प
दिर दिर	दा -रादा - रदा	दा दिर दा रा	दा - दा दिर	दा रा
मैमै गग	मै धध निनि रेंरें	नि-नि ध -ध प	ध पप ध मैमै	प मै
दिर दिर	दा दिर दिर दिर	दा -रादा - रदा	दा दिर दा दिर	दा रा

अन्तरा

0	3	×	2
गग गग म मै	-मै ध मैमै धध	सं- संसं -सं सं	नि रेंरें सं सं
दा दिर दिर दा	-रा दा दिर दिर	दा -रदा -र दा	दा दिर दा रा
नि रेंरें गंगं रेंरें	सं- संनि -नि ध	नि रेंरें निनि ध	प मैं
दा दिर दिर दिर	दा- रदा - र दा	दा दिर दिर दा	दा रा

तेरहवीं मात्रा से प्रारम्भ होने वाली तोड़ी राग रजाखानी गत

३	×		
नि़ रेरे गु म	प ध - प	मै गु रेरे गुगु	रे- गुरे -रे स
दा दिर दा रा	दा दा - दा	रा दा दिर दिर	दा- रदा - र दा
नि़ रेरे गु रे-	स निनि ध़ प़	मै धुधु निस	रेगु मगु रेगु रेस
दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दिर दिर दिर दिर

अन्तरा

0	3	×	2
धु पप धु मै	- पप मै धु	सं - सं सं	नि रेंरें सं -
दा दिर दा रा	- दिर दा रा	दा - दा रा	दा दिर दा -
रें गुंगुं मै गु	रें गुंगुं रें सं	नि धु मैधु पम	गु रे, गुगु सम
दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा रा दिर दिर	दा रा दिर दिर
रे- गुरे -रे स			
दा- रदा - र दा			

आज तीन ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में भी गतों का वादन किया जा रहा है। जो काफी प्रचार में आ गया है। जिसमें से कुछ तालों में जिसमें गतों का वादन किया जा रहा है, उसमें झपताल, दादरा, रूपक, आडा चौताल, एक ताल आदि मुख्य रूप से प्रचलित है।

राग देश रजाखानी गत ।तीन ताल।

स्थाई

3	×	2	0
रे मम प नि	सं - नि ध	प धध मम गग	रे - गनि़ -नि़ स
दा दिर दा रा	दा - दा रा	दा दिर दिर दिर	दा - रदा - र दा
स रे रे नि़ स	ध़ प़.प म प	नि़ स रेरे मम	ग -ग नि़ - नि़ स
दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा रा दिर दिर	दा - रदा - रदा

अन्तरा

3	×	2	0
रे मम प नि	सं - सं स	नि संसं रें सं	नि धध प ध
दा दिर दा रा	दा - दा रा	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा
प निनि सं रें	सं निनि ध प	म ग रेरे गग	रे- रे नि - नि स
दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा रा दिर दिर	दा - रदा - र दा

अहीर भैरव मध्य लय (रूपक ताल)

स्थाई

2	3	×	2	3	×
ग मम	प म	ग रे स	नि॒ध नि॒नि॒	स रे॒	ग - मम
दा दिर	दा रा	दा दा रा	दा दिर	दा रा	दा - दिर
प धध	नि॒ सं	- नि॒ ध	प म	- - गग	रे॒ - -स स-
दा दिर	दा रा	- दा रा	दा रा	-- दिर	दा - -दा रा -

अन्तरा

2	3	×	2	3	×
प धध	नि॒ नि॒	सं - -	सं रें रें	गं रें	सं नि॒ ध
दा दिर	दा रा	दा - -	दा दिर	दा रा	दा दा रा
नि॒ ध	- प म	ग म प	पध नि॒ध	मप धम	गम पम ग-
दा रा	- दा रा	दा दा रा	दिर दिर	दिर दिर	दिर दिर दा

राग भूपाल तोड़ी मध्य लय ।एक ताल।

	3	×	×	0	2	0	3
स	-स रे	ग प	ध -	प गग	रे ग	रे स	-स रे
दा	- रा दा	दा रा	दा	दा दिर	दा रा	दा रा	- र दा
4	×	0	2	0	3	4	×
ग प	स रेरे	सस रे	-रे ग	पप धध	स रेरे	ग रे	स- सध
0	2	0					
- ध प -	पग -रे	ग					
-रा दा-	रदा -रा	दा					

अन्तरा

×	0	2	0	3	4	×
ग पप	पप ध॒	- ध॒ प	ध॒ध॒ ध॒ध॒	सं संसं	रें सं	प ध॒ध॒
दा दिर	दिर दा	-रा दा	दिर दिर	दा दिर	दा रा	दा दिर

0	2	0	3	4	×	0
सं सं रें	ग रे	ग- गरे	-रे स	ध प	ध संसं	ध॒ पप
दिर दा	दा रा	दा- रदा	-रा दा	दा रा	दा दिर	दा दिर

2	0
ग रे	ग
दा रा	दा

हंस ध्वनि मध्यलय झपताल

स्थाई

ग रेरे रेरे ग - प	रे -	ऩि पप स ऩि	रे स
दा दिर दिर दा -रा	दा -	दा दिर दा रा	दा रा
रे गग प	नि सस	नि पप ग प	रे स रे
दा दिर दा	दा दिर	दा दिर दिर	दा दिर

अन्तरा

ग- पनि - प	सं -	रें गंगं रें	नि प
दा- दिर - दा	दा -	दा दिर दा	दा रा
सं रेंरें सं	नि प	ग गग प	रे स रे
दा दिर दा	दा रा	दा दिर दा	दा दिर

राग श्याम कल्याण मध्यलय आड़ा चार ताल मिश्रबानी गत

स्थाई

×		2		0		3		0		4		0	
रे	मैमै	प	ध	मै	प	मै	पप	गग	मम	रे-	रे नि	-नि़	स
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-रा	दा
नि़	सस	रे	स	नि	स	मै	पप	ध	प	गम	-रे	-रे	स
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दा	-रा	दा

अन्तरा

×		2		0		3		0		4		0	
रे	मैमै	प	ध	मै	प	सं	-	-	सं	-	रें	सं	-
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	-	-	दा	-	रा	दा	-
ग	मैमैं	रें	सं	नि	सं	ध	पप	मै	प	ग	मम	रे	स
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा

राग विलासखानी तोड़ी विलम्बित गत झूमरा मिश्रबानी गत

स्थाई

3				×			2				0		
रेग	रे	निस	-रे	ग	ग	ग	रेरे	ग	पध	-म	गरेग	रे	स
दिर	दा	रदा	-रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	-रा	दा	दा	रा
रेग	रे	निस	-रे	ध	स	स	गप	धसं	निसध	-म	मरेग	रे	स
दिर	दा	रदा	-रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दा	-रा	दा	दा	रा

अन्तरा

3				×			2				0		
रेग	रे	गप	-ध	सं	सं	सं	नि निसं	निस	-सं	रे गं	रें	स	
दिर	दा	रदा	-रा	दा	दा	रा	दिर	दा	रदा	-रा	दा	दा	रा
धगं	रें	निसं	-रें	गं	रें	सं	निसं सरें	निधम	-रे		ग	रे	स
दिर	दा	रदा	-रा	दा	दा	रा	दिर	दा	रदा-रा		दा	दा	रा

अध्याय चार

विभिन्न तंत्र वाद्य

तंत्र वाद्यों के प्रकार

मनुष्य प्रारम्भ से ही अन्य प्राणियों की तुलना अधिक विवेकशील रहा है। उसमें अन्य प्राणियों से अधिक कुछ कर सकने की क्षमता विद्यमान है। अपनी इसी विशेषता के कारण उसने कुछ ऐसी ध्वनियां सुनी होगी जिसे जाने अथवा अनजाने उत्पन्न करता रहा होगा। जैसे पृथ्वी पर चलने से उत्पन्न ध्वनि या किसी वस्तु में अनजाने ठोकर लग जाने से उत्पन्न ध्वनि। इसी आधार पर मनुष्य ने वाद्यों की कल्पना करके रचना की होगी।

इस प्रकार प्राचीन काल में उत्पन्न वाद्यों में वर्तमान समय तक अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। पूर्वकाल में पृथ्वी

पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। इसमें से एक "तूर्यांग" नामक कल्पवृक्ष से मनुष्य चार प्रकार के वाद्य प्राप्त हुए। प्राचीन समय के प्रचलित वाद्ययंत्रों को आचार्य भरत ने चार वर्गीकरण किये हैं -

1. तत
2. अवनद्ध
3. घन
4. सुषिरवाद्य।

तत वाद्य

वे तंतु युक्त वाद्य जिनके तंतुओं (तार अथवा तंत्री) को नख, जवा, मिजराब अथवा घोड़े की कमान से रगड़कर बजाते है तथा जिनमें सात स्वर, इक्कीस मूर्च्छना, बाईस श्रुतियां तान और अलंकार, आदि सभी प्रकट हो तत वाद्य कहलाते है इस वर्ग में जो वाद्ययंत्र आते हैं वे निम्नलिखित हैं -

वीणा जाति के सभी वाद्य सितार, सरोद, इसराज,

वायलिन, सारंगी, तानपुरा, दिलरूबा आदि वाद्य आते हैं।

अवनद्ध वाद्य

वे सभी वाद्य जो चमड़े की खाल से मढ़े जाते है वे आनद्ध अथवा अवनद्ध वर्ग में आते है। इस वर्ग में जो वाद्य आते हैं वे निम्नलिखित है -

मृदंग, तबला, ढोलक, पखावज, नगाड़ा, श्री खोल, मुरज, पणव, दर्दुर, हुडुक्का, पुष्कर, घटडिंडिम, ढक्का, आवुज, कुडुक्का, कुडुवा, ढवस, खन्जा, डमरूक, ढक्कुलि, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दन्दुभी, भेरी, निस्साण, तुम्बकी, आदि है इसके अतिरिक्त, खन्जरी, ड्रम, कुन्तल, जुमिडिका आदि।

घन वाद्य

वे वाद्ययंत्र जो धातु निर्मित होते है। जिन्हें एक दूसरे से ठोकर लगाकर या आघात देकर बजाया जाये वे घन वाद्य कहलाते है। जैसे - घण्टा, क्षुद्र घण्टा, जय घण्टा, पट्ट, इचॉइब, करताल, जलतरंग, प्यानो इत्यादि।

सुषिर वाद्य

जिन वाद्ययंत्रों को फूंककर या वायु के दबाव से बजाया जाता है वे सुषिर वाद्य कहलाते हैं। इस वर्ग में निम्नलिखित वाद्य आते हैं -

सुन्दरी, बांसुरी, शहनाई, हारमोनियम, नागस्वर, शंख, श्रृंङ्ग, क्लारिनट, ट्रम्पेट, साक्सफोन इत्यादि।

तंत्री वाद्य के भी प्रकार हैं कुछ वाद्य तो मिजराब से प्रहार द्वारा बजाते हैं तथा कुछ वाद्य किसी शलाका को रगड़कर बजाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक तंत्री वाद्य के बजाने का ढंग अलग-अलग है। इसी आधार पर तंत्री वाद्यों को उनके बजाने के आधार पर वाद्यों के दो प्रकार किये गये हैं - तत्, वितत्।

तत्

वे तंत्री वाद्य जो प्रहार के द्वारा बजाये जाते हैं अथवा मिजराब या अन्य किसी वस्तु से आघात देकर बजाया जाता है वे तत् श्रेणी के वाद्य कहलाते हैं।

जैसे - वीणा, सितार, सरोद, तानपुरा आदि।

<u>वितत्</u>

वितत् श्रेणी में वे सभी वाद्ययंत्र आते हैं जो रगड़कर बजाये जाते हैं अर्थात् जिन वाद्ययंत्रों को गज की सहायता से बजाते हैं उनको वितत् वाद्य कहते है जैसे - इसराज, सारंगी, वायलिन इत्यादि।

भारतवर्ष में तत् वाद्य की परम्परा उतनी ही प्राचीन हैं जितनी वैदिक परम्परा अर्थात् जब से संगीत का अस्तित्व आया उसी समय से वाद्यों को भी विशेष स्थान प्राप्त है। तत् वाद्यों के बिना भारतीय संगीत अधूरा है और इसका कोई अस्तित्व नही है। तत्-वाद्यों के बहुत से प्रकार प्रचलित है। जिनको वादन क्रिया के आधार पर चार उपवर्गों में विभाजित किया गया है -

1. उंगलियों से छेड़कर बजाया जाने वाला वर्ग जिसमें स्वर मण्डल, तम्बूरा आदि आते हैं।
2. कोण त्रिकोण (मिजराब) से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग के अन्तर्गत सितार, सरोद, रूद्रवीणा, विचित्र वीणा, तंजोरी वीणा, गोट्टुवाद्यम आदि वाद्य आते हैं।
3. गज से रगड़कर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में

जो वाद्य आते है उनमें सारंगी, रावणहत्था, इसराज, दिलरूबा आदि आते है ।

4. दण्डों से प्रहार करके भी कुछ वाद्यों का वादन किया जाता है । इस वर्ग में मुख्यतः सन्तूर और कानून आदि वाद्य आते हैं ।

देश में विभिन्न प्रकार के तंत्र वाद्य प्रचलित है जो भिन्न आकृति और स्वरूप वाले हैं । सभी वाद्यों को स्वरूप तथा आकृति भिन्न-भिन्न है ।

इस प्रकार इन तंत्र वाद्यों की वादन क्रिया की भिन्नता के साथ-साथ उनकी बनावट अथवा ढांचा की आकृति के आधार पर भी तत् वाद्यों के छह उपवर्ग किये गये हैं –

1. लम्बी गरदन वाले वाद्य । कुछ वाद्यों के दण्ड लम्बे होते हैं इस आधार पर उनका अलग वर्ग बनाया गया है इस वर्ग के अन्तर्गत निम्न वाद्य आते है – सितार, दिलरूबा, इसराज, तम्बूरा, वीणा, आदि वाद्य आते हैं ।

2. छोटी गरदन वाले वाद्य । कुछ ऐसे वाद्य भी प्रचलित है जिनके दण्ड अथवा गरदन अपेक्षाकृत छोटी होती है इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित वाद्य आयेंगे – रावण-हत्था, सारंगी, आदि भारतीय तथा वायलिन, मिण्डोलियन

आदि विदेशी वाद्य आते हैं।

3. एक दो तुम्बा युक्त वाद्य। इस वर्ग में जो तंत्री वाद्य आते है उनमें तंजोरी वीणा को छोड़कर सभी वीणाएं, तम्बूरा, सितार आदि वाद्य आते हैं।

4. तबली के स्थान पर चमड़ा से मढे हुए वाद्य। इस वर्ग में सारंगी, दिलरूबा, इसराज, सरोद, रबाब आदि वाद्य रखे जाते हैं।

5. ठोस सीधी अथवा घुमावदार लकड़ी से बने हुए वाद्य। इस वर्ग में कुछ प्राचीन भारतीय वीणाएं तथा ईरानी एवं पाश्चात्य हार्प आदि आते हैं।

6. चपटे, पहलदार अथवा चौकोने सन्दूक की भाँति बने हुए वाद्य। इसके बने वाद्य में स्वरमण्डल तथा सन्तूर आदि वाद्य आते है।

सभी प्रकार के तंत्री वाद्यों में किसी न किसी रूप में भिन्नता होती है। इन सभी तंत्र वाद्यों को भिन्न-भिन्न ढंग से रखकर बजाते हैं। क्योंकि प्रत्येक वाद्यों का स्वरूप भिन्न होता है। इस विभिन्न तंत्र वाद्यों के वादन के लिए उनको रखने की स्थित के आधार पर भी वाद्यों को चार उपवर्गों में विभाजित किया गया है -

1. गोद में रखकर, खड़ा अथवा कन्धे पर सहारा लेकर कुछ वाद्यों को बजाया जाता है। इस वर्ग के वाद्यों में इसराज, दिलरूबा, सारंगी आदि वाद्य आते हैं।

2. सम्पूर्ण वाद्य अथवा उसका एक भाग गोद में चित्त अवस्था में रखकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस तरह के वाद्य यंत्रों में स्वरमण्डल तथा तंजोरी वीणा आदि वाद्य आते हैं।

3. गोद का सहारा अथवा पैर का सहारा लेते हुए तिरछे रखकर कुछ वाद्य यंत्रों को बजाया जाता है। इस तरह के वाद्य यंत्रों में सितार, सरोद, स्वर-बहार, सुरसिंगार, रबाब तथा रूद्रवीणा आदि वाद्य आते हैं।

4. कुछ वाद्य ऐसे होते हैं जिन्हें हम सामने रखकर बजाते हैं। इस तरह के जो वाद्य है उनमें सन्तूर, कानून, पियानो आदि वाद्य आते हैं।

इस प्रकार भारतीय संगीत में प्राचीन काल से प्रचलित असंख्य वाद्य यंत्रों के चार मुख्य वर्गीकरण के अतिरिक्त भी तंत्री वाद्यों में उनके अनेक उपवर्ग किये गये हैं अर्थात् वाद्यों को उनकी वादन क्रिया के आधार पर और उनकी आकृतिगत बनावट के आधार पर साथ ही

वाद्यों के वादन क्रिया के समय उसको बजाने के ढंग के आधार पर साथ ही वाद्यों के वादन क्रिया के समय उसको बजाने के ढंग के आधार पर उनके उपवर्ग किये गये हैं। तथा वाद्यों की अलग-अलग श्रेणी बना दी गयी है। आदि काल से चले आ रहे वाद्य विभिन्न परिवर्तनों के साथ तंत्र वाद्यों का स्थान भारतीय संगीत में सर्वप्रमुख रहा है। इन तंत्र वाद्यों के बिना संगीत का कोई अस्तित्व नही है।

लगभग मध्यकाल से ही भारत में ही नही विश्व के अनेक देशों में इतने नये-नये रूप में वाद्यों का आविष्कार होता गया कि उनका वर्गीकरण संगीत वेत्ताओं के लिए एक कठिन समस्या बन गयी। चूंकि वाद्य मनुष्यों द्वारा निर्मित होते है इस कारण उसकी कल्पना की कोई सीमा नही। इस कारण वाद्यों के विभिन्न प्रकारों के उपवर्ग करना एक कठिन काम है।

वाद्यों की वादन शैली

भरत ने तत् वाद्यों को बजाने में दाहिने तथा बायें हाथ से जो अलग-अलग क्रियाएं होती है उन्हें धातु कहा हैं। जैसे सितार को बजाने में दाहिने हाथ से दा दिड़ दाड़ा आदि बोली का वादन किया जाता है। और बायें हाथ से सितार पर मींड, मुर्की, आदि बजाया जाता है। इस प्रकार के धातु भरत के अनुसार चार हैं। 1. विस्तारण धातु, 2. करण धातु, 3. आविद्ध धातु, 4. व्यंजन धातु।[1]

प्राचीन समय में तत् वाद्यों के वादन के लिए जिस प्रकार आजकल मिजराब आदि का प्रयोग होता है उस समय नाखूनों से ही वादन किया जाता था। प्राचीन समय में तो वीणा वादन में नाखूनों के साथ-साथ अंगूठें का भी प्रयोग वादन में किया जाता था किन्तु आजकल किसी वाद्य में अंगूठे से वादन नही होता है।

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लाल मणि मिश्र), पृ. 24.

प्राचीन वीणा वादन में अक्षरों के तीन काल मानते थे - ह्रस्व, दीर्घ, और प्लुत जिनके उच्चारण की अवधि क्रमशः एक मात्रा काल, दो मात्रा काल तथा तीन मात्रा काल होती थी ।

1. विस्तारण धातु चार प्रकार का होता है -

1. विस्तारण - यह धातु एक आघात का है इसमें एक आघात से एक स्वर बजाया जाता है उदाहरण :

स स स स
दा दा दा दा

2. संघातज - यह दो धातुओं का है :

स रे ग म
दाड़ा दाड़ा दाड़ा दाड़ा

3. समवायज - इसमें तीन आघात होते है उदाहरण :

स रे ग म
दाड़द दाड़द दड़द दड़द

4. अनुबन्ध - तीनों प्रकारों के मिश्रण को अनुबन्ध धातु कहते हैं यह मिश्रण दो या तीन प्रकारों को मिला कर बनाया जा सकता है ।

तन्त्री वाद्यों के बोल रचना के आधार पर मिजराब, जवा अथवा प्रहार के अन्य प्रकारों के भिन्न-भिन्न, बोलों का गठन किया जाता है। आजकल के वाद्य सितार और सरोद आदि में जो बोल प्रयोग हो रहे हैं वह विस्तार धातु के इन्हीं चारों भेदों से हुई है।

आचार्य भरत ने वृत्तियों के सम्बन्ध में कहा है कि वृत्तियां तीन है।

1. चित्र वृत्ति,
2. वृत्ति अथवा वार्तिक वृत्ति,
3. दक्षिणावृत्ति।

वृत्ति शब्द का वास्तविक अर्थ वादन अथवा गान शैली का पर्याय माना गया है। इस प्रकार द्रुत लय की शैली चित्र वृत्ति, मध्य लय की शैली वार्तिक वृत्ति तथा विलम्बित लय की शैली दक्षिणा वृत्ति कही जाती है।

आधुनिक समय में जो वाद्य मिजराब या जवा की सहायता से बजाये जाते है उनमें दो प्रकार के बाज बजाये जा रहे है। जो पूर्वी और पश्चिमी बाज के नाम से जाने जाते हैं। पहले एक बाज को बजाने वाले लोग दूसरे बाज को नही बजाते थे तथा दूसरे बाज के लोग

पहले बाज को नही बजा सकते है । परन्तु आजकल इस प्रकार की कोई बन्धन नही रहा । े आज इन्हीं बाजों को मशीतखानी तथा रजाखानी के नाम से जाना जाता है । आज वादक पहले आलाप का वादन करते है तत्पश्चात मशीतखानी फिर रजाखानी गत का वादन करते हैं । आज के समय में मिजराब तथा जवा से बजाये जाने वाले सभी वाद्यों में क्रमशः मशीतखानी तथा रजाखानी गत बजायी जाती है । जो वाद्य गज से तथा फूंक कर बजाये जाते है उनमें कुछ कलाकार तो मशीतखानी और रजाखानी बजाते है और कुछ कलाकार गान की शैलियों को बजाते हैं ।

मशीतखानी गत

उस्ताद मसीत खाँ जो पहले जयपुर में और बाद में दिल्ली में बस गये थे लगभग 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रहे । इन्होंने ही सितार जैसे तंत्र वाद्यों की एक स्वतन्त्र शैली का निर्माणकिया जिसे इनके नाम पर ही मसीतखानी गत के रूप में जाना जाता है । इस शैली की गत में निश्चित मिजराब से बोलों का प्रयोग होता है वह इस प्रकार से है –

दिर | दा दिर दा रा | दा दा रा

ये बोल आठ मात्रा का के है इन्हीं बोलों को दो बार बजाकर सोलह मात्राएं की जाती है। सोलह मात्रा की तीन ताल होती है उसी में ये गतें बंधी होती है मशीतखानी गत का प्रारम्भ 12 वीं मात्रा से ही होता है -

x				2			
1	2	3	4	5	6	7	8
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा

0				3			
9	10	11	12	13	14	15	16
			दिर	दा	दिर	दा	रा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा

मशीतखानी गत की लय विलम्बित ही रखते हैं जिस कारण से इसमें चौगुन, छगुन, तथा अठगुन आदि की लयकारियों के तान तोड़े बजाये जाते है। आजकल तो कुछ कुशल कलाकार अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए इस गत की लय और विलम्बित करके इसमें कुछ अतिरिक्त मिजराब के बोलों का प्रयोग दिखा लेते हैं परन्तु गत का मूल ढांचा नहीं बिगड़ने पाता है जैसे -

राग खमाज तीन ताल विलंबित लय[1]

स्थाई

x	2	0		3
			ग म	पधनि़धम गम गस -ग-म
			दि र	दा दिर दिर -दा-र
पनि़धम प प गम	प निनि सं सं	सनि(सं)- धनि़ ध		
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दिर दा- दिर दा		
			ग म	पधनि़धम गम गस -नि-स
			दिर	दा दिर दिर -दा-र
नि स स सनि़सा -	नि़ ध़ध़ म़ प़	नि सगरे- स		
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दा दा रा		

---

1 तंत्री नाद (डॉ० लाल मणि मिश्र), पृ. 172-73.

अन्तरा

×	2	0	3
		प प दिर	मग मम निध निसंनि- दा दिर दा रा
सं सं सं संसं दादारा दिर	नि संसं गं - - रें सं दा दिर दा रा	निंसं धनि ध गंमं दिर दिर दा दिर	गं रेंसं नि सं दा दिर दा रा
नि रेंरें - संधनि धपध दिरदा दादिर दादिर	प धनि ध संसं निध दा दिरदा-दिर दिर	मप धम ग दिर दिर दा	

रजाखानी गत

सुप्रसिद्ध सितार वादक गुलाम रजा खां ने बन्दिश की ठुमरी तथा तराना के आधार पर मध्य तथा द्रुत लय की गतें निर्मित की जिसे ही इनके नाम पर रजाखानी गत कहा जाने लगा । रजाखानी गतों का कोई निश्चित मिजराब नही होता है और न ही इनके प्रारम्भ होने का कोई निश्चित स्थान या विधान होता है इसमें वादक को अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर अपनी प्रतिभा दिखाने का पूर्ण अवसर होता है। कलाकार अपनी क्षमता के अनुसार इस गत का वादन कर सकता है । पहले तो रजाखानी गत का वादन तीन ताल में ही होता था परन्तु आधुनिक समय में वादक कलाकार तीन ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में जिनमें झूमरा, एक-ताल, रूपक ताल तथा झपताल आदि में भी विकास करने लगा । अधिकतर गतें सम से या खाली से ही प्रारम्भ होती थी किन्तु आज लोग अन्य स्थानों से भी गत प्रारम्भ करके वादन करने लगे हैं । जो सर्वाधिक लोकप्रिय भी होती जा रही है । अन्य तालों में बजने वाली गते भी लोग अधिक पसन्द कर रहे है । और उनका विकास भी हो रहा है -

रजाखानी गतों में अधिकांशतः मिजराब के बोल का जिस प्रकार प्रयोग करते है कुछ इस प्रकार है -

1. सम से प्रारम्भ होने वाली गतों में मिजराब के बोल कुछ इस तरह होते है -

दा दिर दा रा -दिर
दा रा दा दिर दिर दिर
दा रादा - र दा

2. कुछ गते जो खाली से प्रारम्भ की जाती है उनमें मिजराब के बोल कुछ इस प्रकार से होते हैं -

दा दिर दा दा रा

दा -र दा दा -दा रा

दा दिर दा रा

3. तथा सातवीं मात्रा से प्रारम्भ होने वाली गतों में मिजराब के बोल कुछ इस तरह करते हैं -

दिर दिर दा रदा -र

दा रा- दा-र दा दा - - दा -र दा

इस प्रकार आज भारतीय संगीत के तंत्र वाद्यों के वादन में इन्हीं बाज का प्रयोग कलाकार करते है और अपनी कुशलता से विभिन्न प्रकार से चमत्कारिक ढंग से कुछ अन्य प्रयोग भी इन्हीं गतों में कर लेते है। जो कलाकार की प्रतिभा को प्रदर्शित करता है। आज देश मे प्रमुखतया सितार सरोद आदि तंत्र वाद्यों मे इन्हीं बाजों का प्रयोग सर्वसम्मति से प्रचार में है।

रवि शंकर

देश-विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त सितार वादक पं० रवि शंकर का जन्म 7 अप्रैल, 1920[1] को भारत की पवित्र नगरी में हुआ। आपकी गणना भारत में ही नहीं वरन् विदेशों में भी उच्चकोटि के कलाकारों में होती है। इनके पिता पं० श्यामा शंकर जी बड़े ही उत्कृष्ट विद्वान थे। सन् 1938 ई० में मैहर गये और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के शिष्य बन गए। सन् 1941 में उस्ताद ने अपनी पुत्री अन्नपूर्णा का विवाह रवि शंकर के साथ कर दिया। रवि शंकर में सितार वादन की विलक्षण क्षमता मौजूद थी। आपने सारा समय संगीत में ही लगाया है आपने कुछ

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 535.

उत्तर भारतीय और कुछ कर्नाटकीय पद्धति के रागों का निर्माण भी स्वयं ही किया।। आपने संगीत के सर्वोमुखी विकास के लिए कई विद्यालय भी संगीत के खुलवाये। सन् 1962 में[1] किन्नर स्कूल ऑफ म्यूजिक की स्थापना की। आपने कई फिल्मों में भी संगीत दिया है। आपको देश-विदेशों में अनेक अलंकरणों से विभूषित किया गया है। सन् 1967 में भारत सरकार ने पद्म् विभूषण से सम्मानित किया। देश में तो संगीत का खूब प्रचार किया ही साथ ही विदेशों में भी आपने अपने संगीत का व्यापक प्रचार किया और विभिन्न समारोहों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये है आपने अपने जीवन-काल में कई शिष्यों को शिक्षा भी दी। आपके शिष्यों में प्रमुखतः उमाशंकर मिश्र, जया बोस, विचित्र वीणा वादक गोपाल कृष्ण, कार्तिक कुमार, शमीम अहमद, शंकर घोष, शंभू दास, तथा जार्ज हैरिसन मुख्य है।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 538.

विलायत खां

सुप्रसिद्ध सितार वादक उस्ताद विलायत खां का जन्म सन् 1926 ई०[1] में जन्माष्टमी की रात को पूर्वी बंगाल में हुआ। देश के प्रसिद्ध सितार वादक स्व० इनायत खां आपके पिता थे। पारिवारिक वातावरण संगीतमय होने के के कारण आपका लगाव भी संगीत की ओर होना स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप आपने अपने पिता जी से ही संगीत की शिक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी। आपका सितार वादन गौरीपुर घराने से सम्बन्धित है। आपका सितार वादन रेडियो से भी प्रसारित होता रहता है।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 552.

आपने अपने देश में ही सितार का प्रचार नही किया अपितु विदेशों में भी सितार को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। अफ्रीका, इंग्लैण्ड, कनाडा, पेरिस, पोलैण्ड, हालैण्ड, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी, स्विटजर लैण्ड, रूस आदि स्थानों का भ्रमण कर अपने संगीत को वहां पर गौरवान्वित किया है। आपके कुछ प्रमुख शिष्यों में अरविन्द पारिख, कल्याणी राय, काशीनाथ मुखर्जी, बेंजामिन गोमस तथा श्रीमती बिन्दु झवेरी के नाम विशेष रूप से है। स्वयं विलायत खां के भाई अमृत खां ने भी अपने भाई से ही शिक्षा ली थी। आपके बहुत से रिकार्ड आज भी लोग बड़े ही उत्साहपूर्वक सुनते है। आप अपने सितार वादन में जोड़ालाप का वादन बहुत ही सुन्दरता से करते है।

उ0 अब्दुल हलीम जाफर खां

उ0 अब्दुल हलीम जाफर खां ने सितार के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की है। उनके सितार-वादन में इतनी क्षमता होती थी कि श्रोताओं को घंटों मुग्ध रखते थे। उनके द्वारा सितार पर उंगलियों के द्रुत कम्पन से श्रोतागण संगीत के उच्चतम धरातल पर पहुंच जाते थे। आपका जन्म 18 फरवरी सन् 1927 ई0[1] में मध्य प्रदेश के जावरा नामक स्थान में हुआ था। बचपन से ही आपका लगांव संगीत की ओर था। इसी लगाव के कारण इन्होंने अपने पिता जफर खां से सितार की शिक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी। ये इन्दौर घराने के एक कुशल कलाकार के रूप में जाने जाते हैं। यह इनके निरन्तर अभ्यास का ही परिणाम था।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 431.

आपने कतिपय प्रसिद्ध चलचित्रों में भी अपना अद्वितीय संगीत दिया। इन्होंने अपना सर्वस्व जीवन शास्त्रीय संगीत की ओर ही लगा दिया। सितार वादन में तंत्र की व्याख्या करने के अलावा तथा मशीतखानी और रजाखानी शैलियों को कुशलतापूर्वक बजाने के अतिरिक्त इन्होंने स्वयं की एक नई शैली की उद्भावना की, जिससे सितार वादन की कला में एक नया मोड़ आया। उनकी शैली के चरम उत्कर्ष है - बीन अंग, जोड़, घटभरन, फरक, लहक, मझाभिरी, छेड़छाड़, लड़गुथाल, उछटलड़ी, चपकांग और तान की स्वच्छता, गत अंग झाला। इनकी तानों में गति, सवच्छता तथा परिष्कृति का समन्वय दिखाई देता है।

इन्होंने कई रागों को पुनः संस्कृत कर प्रसिद्धि के शिखर तक पहुंचा दिया, जैसे बसंत मुखारी, चंपाकली, राजेश्वरी, श्यामकेदार, फरगना, रूपमंजरी, मल्हार आदि। दक्षिण भारत की कुछ रागों को उत्तर भारत में प्रचलित करने का श्रेय भी इन्हें ही है। जैसे कर्नाटक राग, मुख प्रिय, चलन्ती, कीरवानी, लतांगी, और हेमावती।

इनके सितार वादन के अनेकों रिकार्ड आज भी उपलब्ध है संगीत के सिलसिले में आप कई बार विदेश भी गये। सन् 1970 ई0[1] में भारत सरकार की ओर से "पदमश्री" से भी विभूषित किये गये। इस प्रकार आपकी गणना भारत के विशिष्ट सितार वादकों में है।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 432.

अली अकबर खां

प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अली अकबर खां का जन्म 14 अप्रैल, सन् 1922 ई0[1] को शिवपुर (बंगाल) में हुआ। इनके पिता अलाउद्दीन खां एक श्रेष्ठ सरोद वादक थे। इस कारण पारिवारिक वातावरण संगीत से परिपूर्ण था जिसका प्रभाव स्वयं इन पर भी पड़ा और बाल्यकाल से अपने पिता से शिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया। और अपनी छोटी सी अवस्था में सर्वप्रथम इलाहाबाद के संगीत सम्मेलन में भाग लिया। प्रसिद्ध सितार वादक पं0 रविशंकर आपके बहनोई है और जब कभी आप दोनों कलाकारों की

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 445.

जुगलबंदी होती तो सरोद और सितार एकरूप होकर श्रोताओं को आत्मविभोर कर देते थे।

आपका संगीत भारत में ही नही अपितु विदेशों में भी काफी लोकप्रिय रहा। आपने कई देशों में अपने कार्य-क्रम प्रस्तुत किये जिनमें अमेरिका, लंदन, अफगानिस्तान, फ्रांस, बेल्जियम। अमेरिका में टेलीविजन पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले प्रथम कलाकार थे। आपने देश-विदेश में कुछ संगीत विद्यालय भी स्थापित किये। कलकत्ता और कैलिफोर्निया में "अली अकबर कालेज ऑफ म्यूजिक" स्थापित किया। भारत सरकार की ओर से आपको सन् 1967 ई0[1] में पद्म विभूषण अलंकरण से भी विभूषित किया। इनके सरोद वादन में सफाई, सुरीलापन, मींड के काम और स्वर विस्तार की गहराई तथा बारीकियां दिखाई देती जो यह सिद्ध करती है कि आप एक प्रसिद्ध सरोद वादक में से है। इन्होंने अपने जीवन काल में अनेक शिष्य तैयार किये हैं जिनमें निखिल बनर्जी ‡सितार‡, शरनरानी ‡सरोद‡, वीरेन बनर्जी, अजय सिंह राय, शिशिर कणाधर चौधुरी, दामोदर लाल काबरा तथा शिप्रा बनर्जी। आपके प्रिय राग चन्द्रनन्दन, गौरीममंटी, दरबारी कान्हणा और पीलू है। तथा तालों में त्रिताल और रूपक है। इन्होंने संगीत के लिए देश-विदेश जाकर जो सेवा की वह कभी नही भुला सकते।

---

1 हमारे संगीत रत्न ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 447.

दामोदर लाल काबरा

प्रसिद्ध सरोद वादक दामोदर लाल काबरा का जन्म जोधपुर में 16 मार्च, 1926 को हुआ।[1] इनके पिता का नाम शाह गोवर्धन लाल काबरा था। लगभग 3 वर्ष की अल्पावस्था से ही आपने संगीत सीखना प्रारम्भ कर दिया और जल्द ही संगीत में निपुणता प्राप्त कर ली और विभिन्न संगीत सम्मेलनों में जाने लगे। रेडियो पर भी आपके कार्यक्रम आते रहते थे। दामोदर लाल काबरा राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के सदस्य है, जोधपुर में सन् 1955 में संगीत कला केन्द्र की स्थापना की। श्री काबरा सितार एवं सरोद वादन की शिक्षा देते है।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 482.

शरनरानी

सुप्रसिद्ध सरोद वादिका शरनरानी का जन्म दिल्ली में 9 अप्रैल सन् 1929[1] को हुआ । बचपन से ही नृत्य तथा संगीत का प्रशिक्षण लेना प्रारम्भ कर दिया । तत्पश्चात आपने सरोद वादन की शिक्षा सेनिया घराने के महान संगीतज्ञ पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खां और उनके पुत्र विख्यात सरोद वादक अली अकबर खां से प्राप्त की । थोड़े ही समय में आप एक कुशल और योग्य सरोद वादिका बन गयी । भारत में ही नही वरन् विदेशों में भी भारतीय संगीत की पहचान बनायी । आपके वादन के आधार पर आपको कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया । सन् 1952 में अखिल भारतीय तानसेन विष्णु दिगम्बर पारितोषिक स्पर्धा में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया, सन् 1968 में भारत सरकार की ओर से पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित किया गया । आपने सरोद वादन के देश-विदेश में बहुत से समारोहों और संगीत सम्मेलनों में भाग लिया और लोगों को मंत्र मुग्ध किया ।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 560.

<u>अमजद अली खां</u>

आज के सुप्रसिद्ध सरोद वादक अमजद अली खां का जन्म 9 अक्टूबर 1945 ई0[1] को हुआ। आपके पिता उस्ताद हाफिज अली खां है। जो स्वयं एक प्रसिद्ध सरोद वादक है। संगीत के प्रति आपकी रूचि बचपन से ही थी इसी कारण इन्होंने 5 वर्ष की अल्पावस्था में ही अपने पिता से संगीत शिक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी। और बचपन से ही अपने पिता के साथ विभिन्न संगीत समारोहों में जाया करते थे। आज आप सरोद के वादन के संबंध में अपने देश में तो जगह-जगह संगीत समारोहों में जाते ही है साथ ही साथ विदेशों में भी आपके अनेक कार्यक्रम हो चुके हैं। इन्होंने अपने सरोद पर गायकी अंग को अपनाया है। आप एक सर्जन वादी और प्रगतिशील रचनाकार है। आपने इकहरा तान, गमक और अद्भुत लयकारी का प्रयोग किया है आपका नाम भारत के साथ-साथ विदेशों में भी एक ख्याति प्राप्त कलाकार के रूप में लिया जाता है। अमजद अली ने एराज समारोह

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 65.

(ईरान) में भाग लिया और भारतीय शिष्ट मण्डल के साथ मारिशस, अफगानिस्तान और अमरीका आदि देशों की यात्राएं की । आपने अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त किये हैं । जिनमें सन् 1971[1] में पैरिस में हुए अन्तर्राष्ट्रीय संगीत मंच का यूनेस्को पुरस्कार इन्हें मिला तथा सन् 1975 ई0 में भारत सरकार ने पद्मश्री के अलंकरण से विभूषित किया ।

इन्होंने संगीत के क्षेत्र में अनेक नवीन रागों की रचना भी की । सेनिया बीनकार घराने की शुद्धता को कायम रखते हुए अमजद अली खाँ ने हरिप्रिया, सुहाग भैरव, विभावरी, चंद्रध्वनि, मंदसमीर और किरणरंजनी राग भी बनाये हैं । अमजद अली खाँ ने विभिन्न समारोहों में अपने सरोद वादन के द्वारा आज भी श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर रहे है साथ ही संगीत का प्रचार भी बहुत ही लगन तथा तत्परता से कर रहे हैं । जो आने वाली पीढ़ी के कलाकारों के लिए मार्ग-दर्शन का काम करेगी ।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 65.

आशिष खां

उस्ताद अलाउददीन खां के पौत्र एवं उस्ताद अली अकबर खां के पुत्र आशिष खां की प्रतिभा भी मैहर आश्रम के संगीत पूरित वातावरण में विकसित एवं पल्लिवित हुई है। आपका पारिवारिक माहौल संगीत से परिपूर्ण होने के कारण आपका लगाव संगीत की ओर होना स्वाभाविक ही था।

आशीष खां का जन्म नवम्बर, 1940 में[1] हुआ था। संगीतमय वातावरण का प्रभाव इन पर पड़ा और ये स्वयं छोटी अवस्था से ही अपने बाबा उ० अलाउददीन खां से संगीत शिक्षा लेने लगे। तथा सर्वप्रथम 1952 में रेडियो पर अलाउददीन के साथ बजाया। इसके पश्चात तो आपने अपने जीवन में अनेक कार्यक्रम आज तक पेश करते आ रहे है 1956 में कलकत्ता में आयोजित "तानसेन संगीत सम्मेलन" सरोद वादन पेश किया। इसके अलावा आपने विदेशों में भी अपने कार्यक्रम प्रस्तुत

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 450.

किये तथा कुछ फिल्मों में भी संगीत निर्देशन किया। सन् 1964 से आप रेडियो के कलाकार है। समय-समय पर होने वाले संगीत सम्मेलनों में आप जाते रहते है और अपने सरोद वादन द्वारा लोगों को मंत्र मुग्ध करते रहते हैं। इस समय तो आप विदेशों में रहकर संगीत की सेवा कर रहे हैं और वहीं पर आप कार्यक्रम पेश करते हैं।

जरीनदारूवाला

प्रतिभाशाली सरोद वादिका कुमारी जरीनदारूवाला का जन्म 9 अक्टूबर 1946 ई0[1] को बम्बई में हुआ। बाल्यकाल से आपकी रूचि संगीत की ओर थी फलत: आपके पिता ने हारमोनियम ले आये और जरीन हारमोनियम सीखने लगी और गायन के कई कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये। आपने संगीत की शिक्षा श्री हरिपद घोष, पं0 भीष्मदेव वेदी, पं0 वी0जी0 जोग, पं0 लक्ष्मण प्रसाद जयपुर वाले, पद्मभूषण, डॉ0 एस0 एन0 रातांजन्कर और पं0 एस0 सी0 आर0 भट्ट से संगीत शिक्षा पाई। जरीन का सरोद पर अच्छा अभ्यास है। उस्ताद अली अकबर को सुनकर ही आपको सरोद सीखने की तीव्र लालसा हुई थी। तभी से आपने सरोद सीखना प्रारम्भ कर दिया था और अल्प समय में ही सरोद में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इनकी वादन-शैली की अपनी अलग विशेषता थी। इन्होंने देश में ही नही वरन् विदेशों में भी सरोद वादन पेश किया और अनेक पदक प्राप्त किये।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 472.

जोतिन भट्टाचार्य

जोतिन भट्टाचार्य एक प्रसिद्ध सरोद वादक माने जाते है यद्यपि इनका पारिवारिक महौल संगीतमय नही था फिर भी इन्होंने अपनी रूचि संगीत में होने के कारण निरन्तर अभ्यास के द्वारा आज एक कुशल सरोद वादक है। इनके गुरू बाबा जिस प्रकार स्वयं सरोद पर पॉच तारों का व्यवहार करते थे, उसी प्रकार से जोतिन बाबू को भी शिक्षा प्रदान की । श्रीमती अन्नपूर्णा जी से भी आपने सुरबहार, सितार तथा सरोद की शिक्षा प्राप्त की थी ।

जोतिन बाबू ने देश के विभिन्न भागों में अपना सरोद का कार्यक्रम प्रस्तुत किया । सन् 1967[1] में तानसेन संगीत सम्मेलन कलकत्ता में कार्यक्रम पेश किया और सन् 1958[2] में "बालीगंज संगीत सम्मेलन" में कार्यक्रम प्रस्तुत किये ।

---

1 हमारे संगीत रत्न ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 701.

2 हमारे संगीत रत्न ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 301.

इसी वर्ष जोतिन बाबू को "बाढ कालेज" की ओर से पंडित की उपाधि से विभूषित किया गया । कुछ दिनों तक आपने मैहर के एक संगीत विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की ।

पं० दीनानाथ भट्टाचार्य "वेदान्त वागीश" के पुत्र जोतिन बाबू का जन्म काशी में 1 जनवरी 1926 को हुआ ।

पी0 ए0 सुन्दरम अय्यर

पाश्चात्य वाद्य वायलिन जैसे तंत्र वाद्य पर ख्याति प्राप्त पी0 ए0 सुन्दरम अय्यर का जन्म कोचीन रियासत के विम्बिल नामक गांव में 6 जुलाई, 1891 ई0[1] को हुआ । आपके पिता का नाम श्री अनंत राम शास्त्री है । पी0 ए0 सुन्दरम जी ने पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी से शिक्षा प्राप्त की । आप दक्षिण भारतीय होते हुए भी पलुष्कर जी से हिन्दुस्तानी संगीत की शिक्षा प्राप्त की । श्री रामास्वामी भागवतार से - आपने वायलिन की शिक्षा ली और 8 वर्ष के परिश्रम से ही आप इस कला में पूर्ण हो गये और अपनी विशेषता और कौशल से आप शीघ्र ही गांधर्व महाविद्यालय में वायलिन के अध्यापक नियुक्त हो गये ।

सन् 1965 के बड़ौदा संगीत सम्मेलन में दक्षिणी कलाकार से वायलिन पर हिन्दुस्तानी संगीत सुनकर बहुत प्रभावित हुए और बम्बई में संगीत समारोह में आपको

---

1 हमारे संगीत रत्न ‡लक्ष्मी नारायण गर्ग‡, पृ. 458.

स्वर्ण पदक से सम्मानित किया । आपने मैसूर, आन्ध्र, पूना, हैदराबाद, इन्दौर, औरंगाबाद (निजाम) तथा मध्य प्रदेश आदि स्थानों में अपने संगीत प्रदर्शन द्वारा यश प्राप्त किया । आप कुछ वर्ष मद्रास युनिवर्सिटी में प्रोफेसर पद पर भी रहे। आपने उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों पद्धतियों में पूर्णतया अभ्यास किया और इनके अनुसार दोनों पद्धतियों में मूलभूत सिद्धान्त एक ही है । आज आपकी गिनती योग्य और कुशल वायलिन वादकों में है ।

जी० एन० गोस्वामी

प्रसिद्ध वायलिन वादक जी० एन० गोस्वामी का जन्म बनारस में 7 जनवरी, 1911 ई०[1] को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री केदारनाथ गोस्वामी है। एक बार प्रयाग में श्री गोपीनाथ गोस्वामी जी ने श्री गगन बाबू का बेला वादन सुना उसी समय से उनको बेला की ओर रूचि जागृत हो गई। उसके पश्चात ही आपने वायलिन खरीदा और स्वयं ही बजाने की कोशिश करने लगे। इन्होंने वायलिन के साथ-साथ सितार की भी शिक्षा प्राप्त की उन्होंने उस्ताद आशिक अली खां से सितार की शिक्षा ली।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 473.

परन्तु सितार की अपेक्षा आपकी रूचि वायलिन में अधिक थी जिसे वह छिपकर बजाया करते थे। एक बार उस्ताद ने इन्हें छिपकर सितार पर बताई चीजों को वायलिन पर बजाते देखकर बहुत खुश हुए और वायलिन सीखने की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् आपने 1945 में रामपुर के स्व0 उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ के शिष्य हुए और शिक्षा प्राप्त करने लगे। यद्यपि वायलिन एक विदेशी साज है परन्तु आजकल भारत में भी इसके अनेक कलाकार इस कठिन वाद्य यंत्र पर अपनी साधना कर रहे है।

डी0 के0 दातार

देश के श्रेष्ठतम वायलिन वादक डी0 के0 दातार (दामोदर केशव दातार) का जन्म 14 अक्टूबर, 1924[1] को बम्बई के उच्च ब्राम्हण कुल में सांगीतिक वातावरण में हुआ। आपके पिता स्वर्गीय श्री केशव दातार महान गायक विष्णु दिगम्बर पलुष्कर के शिष्यों में से थे। परन्तु दुर्भाग्यवश डी0 के0 दातार के बचपन में ही पिता जी का स्वर्गवास हो गया।

पारिवारिक वातावरण संगीतमय होने के कारण आपकी रूचि बाल्यकाल से संगीत की ओर थी। आपकी संगीत शिक्षा 'देवधर स्कूल ऑफ इण्डियन म्यूजिक' में वायलिन पं0 विघ्नेश्वर शास्त्री के मार्ग-दर्शन में शुरू हुई। डी0 के0 दातार महान गायक श्री डी0वी0 पलुष्कर के सम्पर्क के कारण आपके आलाप वादन में गायकी अंग दिखाई देती है। आप परम्परागत रागों के प्रस्तुतीकरण में दक्ष है।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 478.

साथ ही साथ शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ उपशास्त्रीय संगीत में भी दक्ष है। आपके वादन की एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता है 'साज की टोनल क्वालिटी' या "वाद्यगत ध्वनि माधुर्य"।

आपने अपनी प्रतिभा तथा अपनी वादन शैली का प्रदर्शन देश में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों और सम्मेलनों में करते आये है आपने देश के कुछ प्रमुख सम्मेलनों जिनमें पटना, बम्बई, पूना, दिल्ली, नागपुर, जयपुर आदि शहरों में भाग लिया। आज आपकी गिनती देश के मूर्धन्य वायलिन कलाकार के रूप में होती है।

एन राजम्

आज भारत में डॉ0 श्रीमती एन राजम एक सुप्रसिद्ध वायलिन वादिका है। डॉ0 श्रीमती एन राजम का जन्म सन् 1938 में[1] हुआ। पारिवारिक वातावरण संगीतमय होने के कारण आपने बाल्यकाल से ही अपने श्री ए0 नारायण अय्यर से उन्होंने वायलिन की शिक्षा ली। जिसके परिणामस्वरूप एक वर्ष में ही कर्नाटक संगीत का "वर्जन" बजाने लगी। पं0 ओंकार नाथ ठाकुर ने इनके वायलिन वादन को सुना और उसमें इन्हें अपनी गायकी की झलक दिखाई दी उसी के बाद से उन्होंने उन्हें अपनी शिष्या बना लिया। सन् 1959 ई0 में श्रीमती राजम ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी संगीत (वायलिन) में लेक्चरर का पद स्वीकार किया और वहीं से उन्होंने पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की।

आपके कार्यक्रम रेडियो से भी प्रकाशित होते रहते है इसके अतिरिक्त आप जगह-जगह होने वाले संगीत

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 460.

समारोहो और सम्मेलनों में भी अपना कार्यक्रम बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करती हैं। श्री राजम् ने अपने वायलिन वादन में गायकी को अपनाया। आपने हिन्दुस्तानी और कर्नाटकीय दोनों पद्धतियों में वायलिन वादन प्रस्तुत करती है इन्हें दोनों पद्धतियों में पूर्ण दक्षता है। इसी लिए अनेकों अलंकरणों से विभूषित किया गया है। इन्हें दोनों पद्धतियों हिन्दुस्तानी और कर्नाटकीय में वायलिन वादन करने के लिए स्वर्ण पदक और सन् 1967 ई0[1] में सुर सिंगार संसद में उन्हें "सुरमणि" की उपाधि से विभूषित किया। आज देशभर में विभिन्न शहरों में एन राजम का वायलिन वादन बहुत ही ध्यान से लोग सुनते और पसन्द करते हैं। वायलिन जैसे कठिन वाद्य यंत्र को आप बहुत ही कुशलता से बजाती हैं।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 461.

शिशिर कर्णाधार चौधरी

वायलिन जैसे कठिन विदेशी साज जो अब भारत में भी काफी प्रचलित हो गया है और इसके बहुत से वादक कलाकार भी है जिनमें से एक नाम शिशिर कर्णाधर चौधरी भी है शिलॉग में जन्मी शिशिर कर्णाधर चौधरी ने आठ वर्ष की अवस्था से ही उस्ताद मोती मियां से संगीत सीखना शुरू कर दिया। इसके बाद लगभग 10 वर्षों तक अली अकबर खां से प्रशिक्षण लिया। सन् 1954[1] ई० में मैरिस कालेज, लखनऊ से बी० म्यूज पास किया। आपने विभिन्न संगीत समारोहों, सम्मेलनों में अपना वादन प्रस्तुत किया और भाग लेती थी आपको बहुत से पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। आप वायलिन की एक कुशल कलाकार के रूप में जानी जाती है।

---

1 हमारे संगीत रत्न [लक्ष्मी नारायण गर्ग], पृ. 564.

बुन्दू खां

सारंगी वादन के क्षेत्र में प्रसिद्ध उस्ताद बुन्दू खां का जन्म सन् 1880 ई०[1] के लगभग दिल्ली में हुआ। बाल्यकाल से ही संगीत की ओर उनकी रूचि थी अतएव संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपने नाना मियां सोंगी खां के निर्देशन में शुरू की और थोड़े समय में ही कुशल सारंगी वादक हो गये और दूर-दूर तक आपकी ख्याति फैल गयी। बुन्दू खां ने भातखण्डे जी से भी

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 514.

संगीत की शिक्षा ली और संगीत सम्बन्धी बहुत सी शास्त्रीय जानकारी प्राप्त की ।

बुन्दू खां ने अपने सारंगी वादन के लिए बहुत सी जगह गये और विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भी भाग लिया आप आकाशवाणी के भी एक प्रतिष्ठित कलाकार है आज आपका नाम प्रतिभाशाली सारंगी वादकों में लिया जाता है आपने अपने जीवन काल में बहुत से पदक प्राप्त किये है । 13 जनवरी, 1955 ई0 को करांची में आपकी मृत्यु हो गई । अब आपकी याद ही शेष रह गयी है । आपका नाम आज भी संगीत जगत के प्रतिभाशाली संगीत वादकों में होती है ।

गोपाल मिश्र

प्राचीन काल से प्रचलित सारंगी नामक तंत्र वाद्य का प्रचार अब उतना तो नहीं रहा पर इसके कुछ कलाकार आज भी सारंगी वाद्य में अपनी साधना कर रहे हैं। इन्हीं में काशी के पं० गोपाल मिश्र का नाम भी लिया जाता है। आप एक सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली सारंगी वादक है। आपका जन्म सन् 1920 ई०[1] के लगभग काशी में हुआ। पारिवारिक माहौल संगीतमय होने के कारण बचपन से अपने के निर्देशन में संगीत का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप 20 वर्ष की अवस्था तक इनका नाम चारों ओर होने लगा। और बड़े-बड़े सम्मेलनों में लोग इनको आमंत्रित करने लगे।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 468.

इन्होंने अपने सारंगी द्वारा संगति तो की ही साथ ही साथ आप स्वतंत्र सारंगी का कार्यक्रम भी प्रस्तुत करते है जो बड़ा ही हृदयग्राही और सरस होता है ताल और लय पर आपका विशेषतया अधिकार रहता था।

आपने भारत की बड़ी-बड़ी रियासतों काश्मीर, बड़ौदा और पटियाला आदि शासकों तथा जनता के समक्ष अपना सारंगी वादन प्रस्तुत करके लोगों के मध्य सम्मान प्राप्त किया । इसके साथ-साथ आपके कार्यक्रम आकाशवाणी से भी समय-समय पर प्रसारित होते रहते है । आपकी गुरू परम्परा पं० गणेश जी मिश्र से आरंभ होती है । इन्होंने अपने निरन्तर अभ्यास के द्वारा आज लोगों के मध्य लोकप्रिय है ।

चन्द्रिका प्रसाद दुबे

प्रसिद्ध इसराज वादक चन्द्रिका प्रसाद का जन्म 1875 ई0[1] में औरंगाबाद जिले के पवई ग्राम में हुआ। आपकी रुचि गायकी की ओर थी किन्तु गला उसके अनुकूल न होने के कारण आपने इसराज (दिलरूबा) सीखना प्रारम्भ कर दिया और निरन्तर अभ्यास के परिणामस्वरूप कालान्तर में आप एक प्रमुख इसराज वादक हो गये। आपके वादन में आलाप जोड झाला तोड़ा तथा संगति आदि सभी चीजें दिखाई देती है और आप इन सभी में पूर्णतया सिद्धहस्त थे।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 471.

कन्हैया लाल धाड़ी आपके उस्ताद थे। आपने कई उपाधियां प्राप्त की है साहित्य समाज गया ने आपको "संगीत भूषण" की उपाधि से विभूषित किया एवं अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन के लखनऊ अधिवेशन में आपको संगीतशास्त्री का सम्मानित प्रमाण पत्र भी मिला। इसराज पर आपकी बायें हाथ की उंगलियां द्रुतगति से चलती है जो आपकी अपनी विशेषता थी। दुबे जी अपने समय के एक कुशल इसराज वादक है। वैसे आज कल इसराज का प्रचार बहुत कम हो गया है।

उमराव खाँ

आज कल वीणा जैसे कठिन वाद्य यंत्र के बहुत कम ही जानकार लोग है तथा इसे सीखने वालों की भी संख्या बहुत कम ही है। परन्तु उनमें से उमराव खाँ उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में तानसेन घराने के एक उज्जवल प्रतिभाशाली तंत्रकार हो गये हैं। उमराव खाँ वीणा वादन में सिद्ध हस्त थे। इनके संगीत में जैसा माधुर्य था वैसा इनके छन्दों में प्राप्त होता था ये अपने समय के बहुत ही प्रतिभाशाली और लोकप्रिय वीणा वादक हुए हैं। इनके दो पुत्र अमीर खाँ और रहीम खाँ भी अच्छे बीनकार हुए। इसके अतिरिक्त आपने बहुत से शिष्य तैयार किये है। इनकी मृत्यु लगभग 1840 ई0 [1] के लगभग हुई थी।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 459.
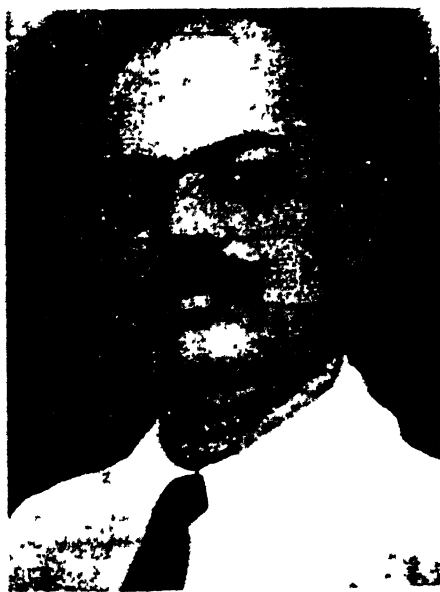
दबीर खां

देश का सर्वाधिक प्राचीन वाद्य वीणा है जिसका प्रचार अब बहुत कम हो गया है क्योंकि अब इसके बहुत ही कम कलाकार है जो वीणा जानते हैं। उन्हीं में उस्ताद मुहम्मद दबीर खां भारत के श्रेष्ठतम् संगीतज्ञों में से एक है। आपका जन्म 14 अगस्त, सन् 1905 ई0[1] को रियासत रामपुर में हुआ था। बाल्यकाल से ही संगीत की शिक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी। आपने अपने बाबा वजीर खां से संगीत शिक्षा लेनी प्रारम्भ की और एक कुशल वीणा वादक बने।

---

1 हमारे संगीत रत्न ॥लक्ष्मी नारायण गर्ग॥, पृ. 475.

आपको बहुत से अलंकरण तथा उपाधियों से विभूषित किया गया है। दबीर खां को डाक्टर ऑफ म्यूजिक तथा संगीत सम्राट आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है। आप भारत के एक श्रेष्ठतम कुशल वादकों में से थे। आपके वीणा वादन से प्रभावित होकर बहुत से कलाकारों ने शिष्यत्व ग्रहण किया जिनमें नवाब रामपुर, स्व0 विष्णु नारायण भातखण्डे, तथा मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खां ने तथा ग्वालियर के प्रसिद्ध सरोदिये उस्ताद हाफिज अली खां ने शिष्यत्व ग्रहण किया।

आपके कुछ अन्य शिष्य है जिनमें गायक श्री के0सी0 डे, श्री ज्ञान प्रकाश घोष, डाक्टर यामिनी गांगुली ‡वादक‡, कुमार बी0 के0 राय चौधरी, श्री राधिका मोहन, मोइत्रा, श्री श्री माया मोइत्रा, आदि मुख्य रूप से है।

<u>बहादुर खाँ</u>

सुरबहार के सिद्धहस्त बहादुर खाँ का जन्म सन् 1931 की 19 जनवरी[1] को बंगलादेश के कुमिल्ला जिले के शिवपुर ग्राम में हुआ था। आपके पिता उस्ताद आयत अली खाँ स्वयं सुरबहार के सिद्धहस्त थे। फलस्वरूप आपकी शिक्षा आपके पिता जी के निर्देशन में ही प्रारम्भ हुई और उसके पश्चात् अलाउद्दीन खाँ से संगीत शिक्षा ली। आपने अपने वादन में श्रुतियों की सूक्ष्म संयोजना का प्रवेश किया जो इसमें सम्भव न थी। इन्होंने कुछ रागों का स्वयं निर्माण किया जिनमें राग उमावती और अहीरी विभाव मुख्य है। आपके दो पुत्र है विद्युत और किरीट जिन्होंने आपसे ही संगीत की शिक्षा प्राप्त की।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 501.

शिव कुमार शर्मा

देश भर में प्रसिद्धि प्राप्त पं० शिव कुमार शर्मा का जन्म सन् 1933 में[1] हुआ उन्होंने बचपन से ही अपने पिता से पहले गायन सीखा उसके पश्चात् तबला सीखा। साथ ही साथ आप सरोद और सितार की पूर्ण जानकारी रखते हैं। सन्तूर नामक तंत्र वाद्य पहले कश्मीर का लोक वाद्य के रूप में जाना जाता था जिसे भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में प्रतिष्ठित स्थान पर लाने का श्रेय आपको ही है। आज देश भर में उनके जैसा महान सन्तूर वादक कलाकार शायद ही कोई हो। इनके अनुसार शततन्त्री वीणा का ही नाम उस समय सन्तूर हो गया जब वह वाद्य कश्मीर से फारस चला गया। पहले इस वाद्य में 100 तार थे अब 116 तार हैं। आपने देश भर में विभिन्न संगीत सम्मेलनों में गये और सन्तूर के कार्यक्रम प्रस्तुत किये। आकाशवाणी से भी आपके कार्यक्रम समय-समय पर प्रसारित होते रहते है।

---

1 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग), पृ. 562.

अध्याय - पांच

तंत्र वाद्यों के प्रचार प्रसार का माध्यम

संगीत एक सजीव एवं अमूर्त कला है जिसमें कलाकार एवं श्रोता दोनों के जीवन में परमानन्द की सम्भावना निहित है। भारतीय संगीत वैदिक युग से लेकर अब तक अनेक परिवर्तनों के माध्यम से पल्लवित होता रहा है। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् कुछ मुस्लिम संगीतज्ञों ने भारतीय संगीतज्ञों से प्रेमपूर्वक या बलपूर्वक बहुत कुछ प्राप्त किया और संगीत के क्षेत्र में बहुत उपलब्धियों को अर्जित की। जिसमें हिन्दुस्तानी संगीत की विभिन्न धाराएं प्रस्फुटित हुई। मुस्लिम शासकों में संगीत की सर्वाधिक उन्नति अकबर के काल में हुयी इसीलिए अकबर के शासन काल को संगीत का स्वर्ण युग माना जाता है। ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन शैलियों का

जन्म हुआ इसी प्रकार वीणा, स्वरश्रृंगार, सितार, सरोद, सुरबहार, विचित्र वीणा, आदि तंत्र वाद्यों की वादन शैलियों में सम्पन्नता आयी । औरंगजेब के शासन-काल में संगीत की दशा बिगड़ने लगी । संगीत को चुनौतियों का सामना करना पड़ा ।

बीसवीं शताब्दी का समय देश के लिए उपलब्धियों का वर्ष रहा है । सांगीतिक दृष्टि से इन वर्षों में भारतीय संगीत का चरमोत्कर्ष हुआ है । अंग्रेजी शासन के समय जो संगीत केवल राजाओं आदि तक सीमित था आज संगीत का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि अधिकतर लोग उसे सुनने समझने और सीखने लगे है ।
अधिकतर लोग उसे सुनने समझने और सीखने लगे है। आज के समय में शायद ही कोई व्यक्ति हो जो संगीत के प्रति जागरूक न हो । इन सब का श्रेय यदि हम इन वैज्ञानिक साधनों और शिक्षण संस्थाओं और सम्मेलनों को दे तो शायद गलत न होगा ।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक आविष्कारों ने विश्व की सभ्यता एवं संस्कृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है । आधुनिक विज्ञान ने जिस तरह हमें अन्य क्षेत्रों में अपना प्रभाव दिखाया है और नये-नये आविष्कारों ने जीवन

के कई क्षेत्रों में नये-नये परिवर्तन किये संगीत का क्षेत्र भी इससे अछूता नही रहा है। नये-नये यंत्रों ने जहां प्रचार और प्रसार में योगदान दिया, वहीं वाद्य यंत्रों में सुधार भी हुआ है। गायन और वादन में भी परिवर्तन आया और एकरूपता ‖स्टेन्ड्राईजेशन‖ आई। प्राचीन समय में जहां स्वरों की स्थापना उनकी श्रुतियों के आधार पर की जाती थी, वही कंपन संख्या और तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना और उनकी शुद्धता की जांच से स्वरों में एकरूपता आई है। स्वर माधुर्य में भी पर्याप्त सुधार आया है।

इन्ही सब के कारण आज जनमानस में संगीत के प्रति इतना गहरा सम्बन्ध स्थापित हो पाया है। संगीत के श्रोतागणों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुयी है। विज्ञान के इस युग में वाद्य यंत्रों के निर्माण में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। पहले वाद्ययंत्रों में जिन तार का प्रयोग होता था उनमें और आज के वाद्ययंत्रों में जिन तांत का प्रयोग होता है उनमें नये-नये धातुओं के मिश्रण से बने तार प्रयोग होते है। इन अच्छे किस्म के तारों की उपलब्धि से वाद्ययंत्रों के स्वर माधुर्य में सुधार हुआ। और उनकी ध्वनि में अन्तर आया है।

नई वैज्ञानिक उपलब्धियों ने जहां वाद्ययंत्रों तथा स्वर सप्तक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया वहीं संगीत के प्रचार और प्रसार में भी विशेष भूमिका रही है। प्राचीन समय में संगीत का आनन्द प्रायः दरबारी लोग ही उठा पाते थे और साधारण जनता उससे वंचित रह जाती थी, पर विभिन्न वैज्ञानिक यंत्रों के विकास ने उसमें एक क्रान्ति सी ला दी है।

प्रचार-प्रसार के कई सशक्त माध्यम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रेखांकित हुये है जिनमें कुछ प्रमुख है :-

1. शैक्षिणिक संस्थान
2. अन्य संस्थान
3. आकाशवाणी
4. दूरदर्शन
5. कैसेट
6. विद्युत सम्बन्धी साधन
7. संगीत के जनप्रिय आयोजन द्वारा।

<u>शैक्षिणिक संस्थाओं द्वारा</u>

भारत में ब्रिटिश सत्ता स्थापित होने के पश्चात्

हिन्दुस्तानी संगीत को देशी रियासतों में ही आश्रय प्राप्त हुआ। बहुत कम ही अंग्रेज अफसर थे जो भारतीय संगीत में रूचि रखते थे। ब्रिटिश नवाबों और देशी रियासतों के राजाओं के बीच कुछ समझौते के तहत राजा या नवाब को एक अंग्रेजी बैंड रखना अनिवार्य होता था। जिसके अन्तर्गत विदेशी वाद्ययंत्र प्रचुर मात्रा में रखे गये। जिसका भारतीय संगीत परम्परा पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कुप्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् मैहर बैंड - मैहर महाराजा बृज नाथ सिंह की छत्रछाया में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ (बाबा) ने इसी प्रथा के अनुसार सन् 1919 ई0[1] से मैहर बैंड का प्रारम्भ कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप विदेशी वाद्य यंत्रों का प्रभाव कम होने लगा और भारत में देशी वाद्यों का प्रयोग बढ़ने लगा। मैहर बैंड में बजाये जाने वाले वाद्यों में सितार, वायलिन, सुरसिंगार बेन्जो तथा चैलो का नाम विशेष रूप से है। सुरसिंगार, सितार में डाड़ की ओर पर्दे लगे रहते है एवं तबली के स्थान पर चमड़ा चढा रहता था "चैलो" एक प्रकार का बड़ा वायलिन या बेला का रूप है।

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 असित कुमार बनर्जी), पृ. 109.

स्वतंत्र भारत में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार की ओर से संगीत के प्रचार प्रसार के विशेष प्रयास किये गये हैं। सबसे पहले तो पाठ्यक्रम में संगीत को एक विषय के रूप में मान्यता दिलायी। संगीत की शिक्षा लेने वालों में तीन श्रेणी में हम छात्रों को रख सकते हैं :

1. संगीत में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा लेने वाले छात्र (घराना) इस तरह की शिक्षा के अन्तर्गत छात्र किसी श्रेष्ठ कलाकार के पास जाकर व्यक्तिगत रूप से शिक्षा ग्रहण करता है और गुरू की बतायी सभी चीजों को उसी रूप में ग्रहण करता है।

2. केवल संगीत शालाओं में जाकर शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र। इस प्रकार के विद्यालय में केवल संगीत संबंधी विषयों गायन वादन तथा नृत्य आदि की शिक्षा प्रदान की जाती है जिसके द्वारा छात्र इस क्षेत्र में रोजगार भी प्राप्त कर सकते है। इसके तहत आजकल बहुत से संगीत विद्यालय देश में सेवा कर रहे हैं।

3. पूर्व माध्यमिक तथा महाविद्यालयों में शिक्षा लेने वाले छात्र। इनमें छात्र संगीत को एक विषय के रूप में लेकर अध्ययन करता है। इसके द्वारा सामूहिक रूप से

छात्रों को संगीत की शिक्षा गुरू के द्वारा प्रदान की जाती है ।

आधुनिक समय में गुरू के पास समय अधिक न होने, तथा बदलती हुयी आर्थिक स्थित के कारण संगीत सीखने की गुरू शिष्य परम्परा तो लगभग समाप्त ही हो रही है । आजकल छात्र पर कोई चीज लादी नही जा सकती है बल्कि स्वेच्छा से ही कोई चीज सीखते है । आधुनिक समय में संगीत के प्रशिक्षण में इन शैक्षिणिक संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है । इस दिशा में पलुष्कर जी तथा भातखण्डे जी के प्रयासों को कभी भी भुलाया नही जा सकता है । लगभग 70-80 वर्षों से संगीत का शिक्षण विद्यालयों द्वारा किया जाने लगा है । जिसका प्रभाव यह पड़ा है कि पहले जो ज्ञान हमें गुरू की खुशामद (सेवा) करने पर प्राप्त होता था आज वो ज्ञान गुरू से सरलता से विद्यालयों में जाकर प्राप्त किया जा सकता है और समय की भी काफी बचत होती है । पाठ्यक्रम की समानता तथा विद्यालयों के सुलभ वातावरण से, विद्यार्थियों से सद्भावना, प्रेम एवं सद्गुणों का विकास हुआ । पहले यह था कि खानदानी व्यक्ति ही संगीतज्ञ बन सकता था आज इनसे अलग व्यक्ति भी संगीतज्ञ की श्रेणी में आ रहा है । आज संगीत के देश अनेक विद्यालय

संगीत की सेवा कर रहे है। जिससे प्रतिवर्ष अनेक विद्यार्थी लाभान्वित होकर देश में संगीत का प्रचार कर रहे है। शास्त्रीय संगीत के शिक्षण हेतु प्रथम संगीत विद्यालय की स्थापना बड़ौदा में सन् 1886 ई0[1] के फरवरी माह में महाराजा सियाजी राव गायकवाड़ द्वारा स्थापित हुआ जो महाराजा सियाजीराव म्यूजिक कालेज के नाम से जाना जाता है।

इसके पश्चात् लाहौर का "गान्धर्व महाविद्यालय" सन् 1913 ई0[2] में पं0 विष्णु दिगम्बर जी ने इसकी स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त ग्वालियर में "माधव संगीत विद्यालय" लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कालेज इलाहाबाद में "प्रयाग संगीत समिति" खैरागढ़ में "इन्द्रकला संगीत विद्यालय" तथा दिल्ली में "गान्धर्व विद्यालय" है। इसके अतिरिक्त भी कई अन्य संगीत संस्थाएं हैं जिनमें संगीत की सभी विधाओं गायन-वादन तथा नृत्य की शिक्षा सुचारू रूप से

---

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (डॉ0 स्वतंत्र शर्मा), पृ. 135.

2 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (डॉ0 स्वतंत्र शर्मा), पृ. 135.

प्रदान की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त देश के सभी विश्वविद्यालयों में गायन-वादन की शिक्षा एक विषय के रूप में दी जा रही है। जिसका लाभ देश के होनहार कलाकारों को निश्चय ही हुआ है।

भारत सरकार के द्वारा संगीत के चतुर्मुखी विकास के लिए संगीत नाटक अकादमी की स्थापना सन् 1953 ई0[1] में की। जिसका मुख्य कार्य राज्यों के साथ केन्द्र द्वारा कलाकारों को प्रोत्साहित करना तथा कला का विकास करना है तथा अध्यापकों को वित्तीय सहायता एवं छात्रों को छात्रवृत्ति देना है। इसके साथ ही संस्थाओं को अनुदान देना शोध कार्यों को प्रोत्साहित करना उन्हें प्रकाशित करना है। अकादमी की ओर से 26 जनवरी, 1981 के पावन दिवस पर पण्डित रविशंकर (सितार वादक) को पद्मविभूषण की उपाधि से अलंकृत किया गया।

सन् 1954 ई0[2] में भारत सरकार दिल्ली में ललित

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अजित कुमार बनर्जी), पृ. 112.

2 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अजित कुमार बनर्जी), पृ. 113.

कला अकादमी की स्थापना की गई। इसके द्वारा भारतीय कला को देश एवं विदेश में प्रचार कर उसे प्रोत्साहित करना है। इसके द्वारा संगीत एवं सम्बन्धित अनेक चित्र भी प्रचार, प्रकाशन और नुमाइश, वर्कशाप के द्वारा सुलभ हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त फिल्मों के द्वारा भी संगीत के कुछ वाद्ययंत्रों को प्रोत्साहन मिला है कुछ प्रसिद्ध फिल्मों में वाद्ययंत्रों के रूप में बांसुरी, क्लोरोनेट, सितार, मेडोलिन का प्रयोग होने लगा है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की राजधानी में मिनिस्ट्री ऑफ साइंटीफिक रिसर्च एण्ड कल्चरल फेयर्स[1] की स्थापना हुई। जिससे देश विदेश में सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाने के लिए अपने देश के सांस्कृतिक मण्डल को विदेशों में तथा विदेशों के सांस्कृतिक मण्डल को अपने देश में आमंत्रित किया जाता है। इसी के द्वारा आज देश के बहुत से ख्याति प्राप्त कलाकार विदेशों में भारतीय संगीत

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत: परिवर्तनशीलता (डॉ० अजीत कुमार बनर्जी), पृ. 128.

के प्रचारार्थ जा चुके हैं। जिसमें डॉ0 अली अकर खाँ, पं0 रविशंकर, निखिल बनर्जी, विलायत खाँ, आदि के नाम उल्लेखनीय है। अमेरिका के दो फाउन्डेशन है "फोर्ड फाउन्डेशन" तथा "राक फैलो फाउन्डेशन" द्वारा ही इन कलाकारों को आमंत्रित किया गया है। इस प्रकार इन संस्थाओं द्वारा ज्ञात होता है कि विदेशों में जाने वाले संगीतज्ञों में तंत्र वादकों की संख्या अधिक है। उन तंत्र वाद्यों में भी सितार की। पं0 रविशंकर, अली अकबर, एवं आशीष खाँ आदि के कालेज विदेशों में कार्य कर रहे है। उ0 अली अकबर (केलिफोर्निया), पं0 रविशंकर (केलिफोर्निया एवं बनारस), निखिल बनर्जी (कलकत्ता), शरण-रानी (दिल्ली), और आशीष खाँ (कैनेडा) में विद्यालय चला रहे है।[1]

इन कलाकारों ने केवल अपने देश में ही नही वरन् विदेशों में भी तंत्र वाद्यों के प्रचार को बढ़ाया है। वाद्य संगीत में भाषा का बन्धन न होने से, विदेशों में अधिक सुविधा हुई यही सब कारण है कि देश के साथ-साथ

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अजीत कुमार बनर्जी), पृ. 93.

विदेश में भी तंत्र वाद्य अधिक प्रिय हैं ।

सौरीन्द्र मोहन ने भी संगीत को महलों की चारदीवारी से निकालकर जन-साधारण में प्रचारित किया । इसके साथ-साथ पं० विष्णु नारायण भातखण्डे तथा विष्णु दिगम्बर पलुष्कर का प्रयास भी संगीत के प्रचार-प्रसार में कम सराहनीय नही है ।

भारत सरकार की ओर से संगीत को प्रोत्साहन हेतु अनेक सम्मान प्रदान किये जाते है जिनमें कालीदास सम्मान, तानसेन सम्मान आदि मुख्य है । इस प्रकार भारतीय संगीत को बहुर्मुखी विकास के लिए सरकार की ओर से नित नये कार्य किये जा रहे है जो निश्चय ही सराहनीय है इसके द्वारा निश्चित ही भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में काफी बल मिला है । इसके अतिरिक्त देश के कुछ ख्याति प्राप्त कलाकार देश-विदेशों में अपने संगीत के द्वारा प्रचार-प्रसार कर रहे है। सुप्रसिद्ध सरोद वादक अमजद अली खाँ ने एराज समारोह (ईरान) में भाग लिया और भारतीय शिष्ट मण्डल के साथ मारिशस अफगानिस्तान और अमरीका की यात्रा की । सन् 1971 में पेरिस में हुए अन्तर्राष्ट्रीय संगीत में यूनेस्को पुरस्कार प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने इन्हें पद्मश्री अलंकार से सम्मानित किया ।

प्रसिद्ध वायलिन वादिका एन0 राजम ने हिन्दुस्तानी और कर्नाटकीय दोनों पद्धतियों में वायलिन वादन करके काफी ख्याति प्राप्त की और वायलिन जैसे कठिन साज की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया ।

आधुनिक समय में तंत्र वाद्यों के क्षेत्र में विशेष रूप से परिवर्तन हुआ है । हमारे संगीत में प्राचीन और आधुनिक वाद्य दोनों है वैदिक युगीन वीणा में तारों के स्थान पर हवा या मूंज का प्रयोग होता था उसके पश्चात् पशुओं के आंत से तांत बनाकर तारों के स्थान पर लगाये जाते थे। आधुनिक समय में धातु के तारों का प्रयोग तंत्र वाद्यों में होने लगा है । 7 वीं से 13 वीं शताब्दी के बीच भारत में त्रितंत्री एवं किन्नरी वीणा का प्रचार था । एकतंत्री सारिक रहित तथा किन्नरी सारिका युक्त थी । "आइने अकबरी"[1] में अबुल फज़ल ने, इसमें पांच तार एवं 16 सारिकाएं बतायी है । इन दोनों को ही निबद्ध तथा अनिबद्ध तम्बूरा कहा है । उसी के आधार पर संगीत सार ‡तानसेन‡, उसी के आधार पर सितार तथा तम्बूरा का वर्णन प्राप्त होता है।

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत:परिवर्तनशीलता ‡डॉ0 अजित कुमार बनर्जी‡, पृ. 34.

आजकल बहुत कम लोग ही है जो वीणा वादन की शिक्षा लेते है पहली बात तो यह है कि लोगों की रूचि वीणा में सरोद और सितार जैसे तंत्र वाद्यों की तुलना में कम हो गयी है। दूसरी बात यह है कि अब योग्य और प्रतिभाशाली बीनकार ही नही रहे। जो कुछ बीनकार है उन्हीं से संगीत के प्रतिभाशील विद्यार्थियों को पूर्ण लाभ उठाना चाहिए। आजकल शैक्षणिक संस्थाओं में वीणा का कोई स्थान नही है। आधुनिक संगीत शिक्षा के नये आयोजन में वीणा वादन की शिक्षा के लिए विशेष स्थान होना चाहिए। आधुनिक काल में प्रचलित अधिकतर तंत्री वाद्य प्राचीन कालीन तंत्री वाद्यों के संशोधित और परिवर्धित रूप है।

तम्बूरा और सितार त्रितंत्री वीणा के ही दो विकसित रूप है। पहले इन दोनो का प्रयोग केवल गान के लिये प्रयोग किया जाता था। किन्तु बाद में सितार के लिए नई वादन शैली का विकास हुआ। सन् 1940-45 के आस-पास से सुरबहार का आलाप आगे भी सितार में होने लगा जिससे सुर बहार का भी लोप हो गया। वर्तमान समय सितार ही देश का सर्वाधिक प्रसिद्ध वाद्य यंत्र हुआ। यह वाद्य यंत्र आज देश भर में एक विषय के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इन्ही सब कारणों

से आज विश्व भर में सितार सर्वश्रेष्ठ वाद्यों मे गिना जाता है ।

प्राचीनतम वाद्य सरोद का संगीत जगत में महत्वपूर्ण स्थान रहा है । "रबाब" के साथ इसका आकृतिगत सादृश्य है । गुलाम अली खाँ इसके अन्वेषक माने गये है । वर्तमान समय में सरोद के सुप्रसिद्ध वादक उस्ताद अमजद अली खाँ ने अपने देश में ही नही अपितु विदेशों में भी सरोद का खूब प्रचार किया । सरोद और सितार की वादन शैली मिजराफ के प्रयोग के कारण मूलतः भिन्न है प्रारंभिक बोल "दा" और "रा" विपरीत है । सरोद का "दा" सितार का "रा" और सितार का "दा" सरोद का "रा" होता है । जिस प्रकार सितार और सुरबहार दोनों मिलकर आलाप एवं गत शैली को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करते है ठीक वही सम्बन्ध सरोद और सुरश्रृंगार में पाया जाता है । लगभग 16 वीं शताब्दी में विकसित विदेशी वाद्य यंत्र वायलिन को हिन्दुस्तानी संगीत के लोगों ने इस वाद्य में काफी रूचि दिखाई तथा इसके अनेक कलाकार आज भी देश में मौजूद हैं । 1924[1] के लखनऊ के संगीत सम्मेलन में

---

1 हमारा आधुनिक संगीत (सुशील कुमार चौबे), पृ. 142.

स्व0 अलाउद्दीन खाँ वायलिन बजाने में ही प्रसिद्ध हुए थे। आज संगीत में वायलिन ने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। तथा बहुत से होनहार कलाकार इस पर परिश्रम कर रहे है।

सन्तूर नामक वाद्ययंत्र का स्वरूप लगभग स्वर-मण्डल के समान होता है। सन्तूर का वादन मुड़ी हुयी डण्डियों से होता है वर्तमान समय में पं0 शिव कुमार शर्मा ने काफी ख्याति प्राप्त की है। उन्होंने इसके प्रचार-प्रसार में काफी शिष्यों को सन्तूर की शिक्षा दी और लोगों में सन्तूर के प्रति रूचि जाग्रत की।

सारंगी जैसे वितत श्रेणी के वाद्ययंत्र की परिकल्पना "रावणास्त्र" तथा "रावणहस्त" वीणा से हुयी है[1] सारंगी के दो रूप वर्तमान काल में भी दिखाई पड़ते हैं। एक बिना तरब वाली जिसे जोगी लोग बजाते है तथा दूसरी प्रकार की जिसे गुणी साजिन्दे बजाते हैं। आधुनिक समय में शैक्षणिक संस्थाओं में इसे पाठ्यक्रम में नही शामिल किया गया है। आधुनिक युग के कुछ प्रमुख सारंगियों में मम्मन

---

1 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ0 लाल मणि मिश्र), पृ. 53.

खाँ, बुद्धु खाँ, आगरे और कलकत्ते के बरल खाँ इन्दौर के शमीर खाँ मुख्य है। सारंगी ही ऐसा वाद्य है जो प्राचीन गायन परम्परा के बीच में सम्बन्ध जोड़ सकता है। अतएव सारंगी जैसे साज को जीवित और सुरक्षित रखना अत्यन्त अनिवार्य है।

इस प्रकार यह निश्चित होता है कि तंत्र वाद्यों के क्षेत्र में प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक अनेक परिवर्तन हुए है कुछ प्राचीन वाद्यों का लोप हुआ कुछ नवीन वाद्यों का जन्म हुआ। इन वाद्य यंत्रों के प्रचार-प्रसार में शैक्षणिक संस्थाओं का जो योगदान रहा है वह सराहनीय रहा है भारत सरकार की ओर से किये गये प्रयास भी इस दिशा में काफी सफल सिद्ध हुए। इन सभी का प्रभाव यह है कि आज देश में ही नही बल्कि विदेशों में भी बहुत से ख्याति प्राप्त तंत्र वादक संगीत का प्रचार कर रहे है और अनेक नये कलाकारों को सीखने की ओर प्रेरित भी किया है।

<u>आकाशवाणी द्वारा</u>

संगीत के क्षेत्र में उसके प्रचार-प्रसार में आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आकाशवाणी या रेडियो ही ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा संगीत जन-मानस तक पहुंचा है। इसके द्वारा लोग घर बैठे देश-विदेश के कलाकारों का गायन व वादन आनन्दपूर्वक सुन सकते हैं। संगीत के क्षेत्र में बीसवीं शती के तीसरे दशक में रेडियो ही प्रचार प्रसार का माध्यम बना है। भारत में प्रसारण का प्रारम्भ सन् 1926 में एक निजी कम्पनी इण्डियन ब्रॉड कास्टिंग कम्पनी लिमिटेड द्वारा किया गया और 23 जुलाई, 1927 को बम्बई स्टेशन का शुभारम्भ हुआ।[1]

प्रारम्भ में जब रेडियो का प्रयोग संगीत के लिए होता था उस समय आज की तरह आधुनिक माइक व्यवस्था न थी और न ही तकनीकी पद्धति से तैयार स्टूडियोज थे। एकास्टिक पद्धति ‹एकास्टिक ट्रीटमेंट› का विकास नही हुआ था। कार्यक्रम जीवंत ‹लाइफ› ही हुआ करते थे क्योंकि टेप रिकार्डिंग की व्यवस्था भी उस समय नहीं थी।

----

1 हिन्दुस्तानी संगीतः परिवर्तनशीलता ‹डॉ० अमित कुमार बनर्जी›, पृ. 103.

जिस कारण से कलाकारों को माईक के सामने बैठकर जो प्रदर्शन करते श्रोता के पास पहुंचते - पहुंचते आवाज में भर्राहट (डिसटेर्टिंड) पन आ जाता था । संगीत के कार्य-क्रमों में इसका असर ज्यादा पड़ता था । परन्तु धीरे-धीरे तकनीकी सुधारों से परिवर्तन आये और आज रेडियो का प्रसारण काफी संतोषप्रद हो गया है ।

प्रारम्भ में रेडियो से 5-7 केन्द्रों से ही संगीत का प्रसारण होता था । आज के समय 100 से भी अधिक केन्द्रों से संगीत के कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं । संगीत को पुनर्जिवित करने तथा उसके प्रचार-प्रसार में आकाशवाणी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जिसे हम कभी भुला नही सकते है ।

1952-53[1] में आकाशवाणी ने नया प्रारम्भ किया - शास्त्रीय संगीत का प्रचार । प्रत्येक केन्द्र नये-नये कलाकारों की खोज में जुट गया और पूरे जोर-शोर के साथ संगीत सम्मेलनों का आयोजन भी किया जाने लगा । आज रेडियो पर नियमित रूप से शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अजित कुमार बनर्जी), पृ. 105.

होते रहते हैं। एक समय था जब आकाशवाणी से केवल गीतों आदि का ही प्रसारण होता था किन्तु वर्तमान समय में संगीत के मूर्धन्य कलाकारों का वादन भी समय-समय पर प्रसारण रेडियो से होता रहता है। जिसका लाभ हम घर बैठे उठा सकते हैं।

आकाशवाणी द्वारा टेप लाइब्रेरी की व्यवस्था है, जिसमें अनेक दिग्गज संगीतज्ञों के कार्यक्रमों को टेप करके संग्रहित कर रखा गया है। जो समय-समय पर प्रसारित होता रहता है। इन नवीन अनुसन्धनों द्वारा संगीत के प्रचार-प्रसार को बहुत बल मिला है। संगीत को घर-घर पहुंचाकर जन-सुलभ कराने में रेडियो का महत्वपूर्ण स्थान है। आज के समय में शायद ही कोई ऐसा घर हो जहां रेडियो न हो। पहले. जिन वादक कलाकारों का वादन सुनने के लिए कलाकारों को खुश करना कठिन था आज हम उसे घर बैठे रेडियो के द्वारा सुन सकते हैं।

आकाशवाणी द्वारा नये कलाकारों ने भी तंत्र वाद्यों के प्रचार-प्रसार को बढ़ाया है, कुछ नये कलाकारों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर मिला है। आज लगभग सभी तंत्र वाद्यों जैसे - सितार, सरोद, वायलिन, आदि के कलाकारों का वादन आकाशवाणी से समय-समय पर प्रसारित

किया जाता है। जिसके फलस्वरूप हमें इन श्रेष्ठ कलाकारों की वादन क्रिया जो पहले सभी को सुलभ न थी वह आज आकाशवाणी के माध्यम से सर्वसुलभ हो सकी है।

आकाशवाणी से संगीत प्रसारण के लिए कुछ विशिष्ट लोगों का स्टाफ बनाया गया है जिनके सहयोग से सांगीतिक कार्यक्रम समय-समय पर प्रसारित किये जाते हैं। आज आकाशवाणी से समय-समय पर रेडियो संगीत सम्मेलन, संगीत परिचर्चाएं, प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती है और उनका प्रसारण भी यथा समय होता रहता है। आडीशन बोर्ड की स्थापना की गई जिनके द्वारा शास्त्रीय संगीत के प्रसारण के लिए कलाकारों का चुनाव किया जाता है तथा उनकी प्रतिभा के आधार पर उनको ग्रेड में विभाजित करते हैं। कलाकारों को उनकी वादन-क्षमता के आधार पर "ए ग्रेड, बी ग्रेड" प्रदान किये जाते है तथा कुछ श्रेष्ठ कलाकारों को ही उच्च श्रेणी का स्थान दिया जाता है।

आज से कुछ वर्षों पूर्व तक लोगों में तंत्र वाद्यों के प्रति पूर्ण जानकारी न होने के कारण उसमें रूचि नही थी, किन्तु आज रेडियो ऐसे माध्यम के द्वारा घर-घर में लोग कलाकारों के वादन को सुनकर समझकर उसको सीखने की

रूचि जाग्रत हुयी है। वर्तमान समय ऐसा है कि विभिन्न तंत्र वाद्यों को लोग उतनी ही रूचि से सीख रहे हैं। तथा इसके प्रचार-प्रसार के प्रति जागरूक भी हो गये हैं। आज देश में विभिन्न तंत्र वाद्यों के महानतम कलाकार है जिनके द्वारा उदीयमान, प्रतिभाशील कलाकार शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। प्रतिष्ठित कलाकारों द्वारा वाद्यों के प्रति लोगों में रूचि जाग्रत करने का सर्वप्रथम सर्वसुलभ तथा सर्व-प्रमुख साधन रेडियो ही है। आज के समय में तंत्र वाद्यों का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि सुगम संगीत के कार्यक्रमों में भी विभिन्न तंत्र वाद्यों जैसे - सारंगी, सितार, वायलिन आदि का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य संगीत में भी कुछ नये वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें इलेक्ट्रिक गिटार, बैंजो आदि मुख्य रूप से प्रयोग होते है।

आकाशवाणी की ओर से प्रति वर्ष सांगीतिक प्रतियोगिताएं आयोजित होती है जिसमें कंठ संगीत, वाद्य संगीत और समूह गान आदि प्रतियोगिताएं आयोजित होती हैं। जिसके द्वारा प्रतिभाशाली कलाकार का चयन किया जाता है। आकाशवाणी द्वारा किये गये इन आयोजनों के द्वारा भी संगीत के प्रचार प्रसार को काफी बढ़ावा मिला है। वर्तमान समय में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का

जितना व्यापक प्रचार हो रहा है वह लगभग आज से 40 - 50 वर्षों पूर्व नही था। इन सब का श्रेय हम आकाशवाणी को ही दे सकते हैं।

रेडियो हमारे संगीत से बहुत सम्बन्धित है। रेडियो वस्तुतः एक सरकारी संस्था है। इसके मुख्यतः दो उद्देश्य है मनोरंजन और प्रचार। रेडियो संगीत का सिद्धान्त है अपने सुनने वालों को खुश करना जो संगीत सुनने वालों का मनोरंजन कर सके वही उत्तम संगीत है। रेडियो शास्त्रीय संगीत की व्याख्या भी करता है। विभिन्न कलाकारों के व्याख्यान, चर्चाएं, भी समय-समय पर प्रसारित होती रहती है। दैनिक प्रसारणों की संख्या में भी आकाशवाणी के विविध चैनलों पर शास्त्रीय संगीत का प्रसारण काफी बढ़ा है, इस प्रकार एक वैज्ञानिक साधन के रूप में रेडियो के द्वारा संगीत का प्रचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। रेडियो के माध्यम से जितने श्रोता एक ही समय में विभिन्न कलाकारों को सुनते है, किसी अन्य माध्यम से नहीं। सम्मेलन आदि तो कभी-कभी होते हैं और एक साथ इतने श्रोता, एक हाल या सभागृह में एकत्र भी नही हो सकते, जितने श्रोता देश के किसी भी कोने में बैठकर संगीत का आनन्द ले सकते हैं।

संगीत और संगीत शिक्षा, दोनों ही कार्यक्रम श्रोताओं में लोकप्रिय हैं ।

आधुनिक समय में विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण आज आकाशवाणी स्टूडियो अत्यन्त आधुनिक तकनीक के आधार पर बनाये जा रहे है । क्योंकि बंद हाल में ध्वनि का परावर्तन होता है जिससे आवाज गूंजने लगती है और स्वाभाविक आवाज नही रह पाती है इसी कठिनाई के कारण आजकल साउन्ड-प्रूफ कमरों का निर्माण किया जाता है। ताकि रिकार्डिंग के समय व्यतिकरण [इन्टरफियरेन्स] तथा दूसरे अप्रिय लगने वाले अवगुण कम से कम हों। डिस्टार्शन कम से कम हो तथा गूंज का आभाष आवश्यक मात्रा में ही हो । इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए संगीत के कक्ष अलग तथा वार्ता आदि के कक्ष अलग होते है।

इस समय भारत में रेडियो एक शक्तिशाली प्रसार माध्यम है जो देश के हर कोने में पहुंचा हुआ है और जिसने श्रोताओं के एक बड़े वर्ग को शास्त्रीय संगीत के प्रति आकृष्ट किया है । यही एक माध्यम है जिसके कारण शास्त्रीय संगीत अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से प्राप्त कर सका है ।

दूरदर्शन द्वारा

आधुनिक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्र वाद्यों का विशेष स्थान है। स्वतंत्रता के पूर्व बहुत कम तंत्र वाद्य थे जो प्रचार में थे। उस समय प्रचलित तंत्र वाद्यों में वीणा तथा उसके विभिन्न प्रकार तथा सितार, सरोद, सुरसिंगार, इसराज, दिलरूबा, सारंगी आदि वाद्य ही प्रचलित थे। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक नये तंत्र वाद्यों का प्रचार हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् संगीत के प्रचार-प्रसार का श्रेय हम नये-नये वैज्ञानिक अनुसंधानों को दे सकते हैं। जिनमें मुख्य रूप से दूरदर्शन का नाम ले सकते हैं। वैसे टी0 वी0 के आविष्कार ने भी संगीत के क्षेत्र में पर्याप्त योगदान दिया है।

भारत में टी0वी0 का प्रारम्भ दूरदर्शन के नाम से सर्वप्रथम 1-4-1976 से प्रारम्भ हुआ[1]। वैसे 1930 ई0 के पश्चात् यूरोप और अमेरिका में टैलीविजन का प्रचार होने लगा था। आजकल भारत में दूरदर्शन का प्रचार काफी

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अखिल कुमार बनर्जी), पृ. 107.

बढ़ा है दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास से होता हुआ अन्य शहरों में इसका विकास होता जा रहा है। देश का शायद ही कोई शहर बचा हो जहां दूरदर्शन केन्द्र न हो। दूरदर्शन के प्रसारण केन्द्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। आजकल रंगीन दूरदर्शन का प्रचार भी काफी बढ़ रहा है।

दूरदर्शन द्वारा संगीत के प्रचार प्रसार को जो बल मिला वह किसी अन्य वैज्ञानिक उपकरणों से सम्भव नही है। पहले जिन वाद्य यंत्रों को केवल सुनते थे आज उसे लोग घर बैठे देखकर आनन्द उठा सकते हैं। एक समय था जब श्रेष्ठ कलाकारों का संगीत सुनने के लिए उन्हें राजी करना कठिन काम था वहीं आज दूरदर्शन ऐसे माध्यम से संगीत के मूर्धन्य कलाकारों का वादन अथवा गायन समय-समय पर देखने को मिल जाता है।

आकाशवाणी के द्वारा जिस कलाकार की कला को हम केवल सुन सकते थे वही वर्तमान समय में दूरदर्शन द्वारा कलाकार की वादन शैली तथा स्वयं कलाकार को भी पहचानने में भी हम सक्षम हुए हैं। पहले तंत्र वादन में लोगों की रूचि बहुत कम थी परन्तु आज के समय में अनेक प्रतिभाशाली कलाकार तंत्र वादन के क्षेत्र में आगे आये

हैं और इस सब का कारण हम दूरदर्शन को मान सकते हैं ।

आज दूरदर्शन से समय-समय पर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित किये जा रहे हैं । जैसे रात्रि में संगीत का अखिल भारतीय कार्यक्रम के तहत देश के ख्याति प्राप्त कलाकारों का गायन अथवा वादन तथा नृत्य के कार्यक्रम आते रहते हैं । जिससे हमें इन प्रतिष्ठित कलाकारों की प्रतिभा देखने का अवसर हमें घर बैठे प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त भी समय-समय पर देश के उदीयमान, प्रतिभाशील युवावर्ग के कलाकारों का भी कार्यक्रम दूरदर्शन पर प्रसारित होता रहा है । इस प्रकार दूरदर्शन द्वारा इन कलाकारों को लोगों तक पहचान बनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है ।

भारतीय संगीत को विदेशों में पहुंचाने तथा वहां के संगीत को यहां पहुंचाने के लिए दूरदर्शन एक सशक्त माध्यम है । आज देश के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों जिनमें पं0 रवि शंकर, उस्ताद अमजद अली खां आदि ऐसे ही अनेक कलाकार विदेशों में अपने संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत करके भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । फलस्वरूप आपको अनेकों पुरस्कार विदेशों में भी प्राप्त

किये है। उस्ताद अमजद अली खां को 1971 ई0 में पेरिस में हुए अन्तर्राष्ट्रीय संगीत मंच का यूनेस्को पुरस्कार मिला। इसके अतिरिक्त भारत की ओर से भी इन कलाकारों को पदमश्री आदि पुरस्कारों से समय-समय पर कलाकारों को विभूषित किया जाता रहा है। जिसे हम दूरदर्शन के माध्यम से देख कर जान पाते हैं।

दूरदर्शन पर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों के अतिरिक्त सुगम संगीत, सिने संगीत, पाश्चात्य संगीत के भी कार्यक्रम भी विभिन्न समय पर दिखाया जाता है। और इन्हें देखने से लगता है कि भारतीय तंत्र वाद्यों का प्रचार काफी बढ़ा है। क्योंकि उन्होंने अपना स्थान हर तरह के संगीत में बनाया है। इसके अतिरिक्त भी अनेकों नये-नये तंत्र वाद्य भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार विभिन्न तंत्र वाद्यों को दूरदर्शन पर देखकर उसको सुनकर उसको सीखने तथा उसके विषय में जानने की रूचि लोगों में बढ़ी है। आज अधिक लोगों का उत्साह तंत्र वाद्यों की ओर बढ़ा है। आज देश में बहुत से ऐसे कलाकार मौजूद है जो तंत्र वाद्य को प्रचार-प्रसार में जोर शोर से लगे हुए हैं।

भारत ऐसे विकासशील देश में कुछ बड़े शहरों में

समय-समय पर संगीत सम्मेलन, संगीत समारोह, तथा संगीत सम्बन्धी परिचर्चाएं होती रहती है जिनमें हर व्यक्ति नही पहुंच सकता है, परन्तु दूरदर्शन पर इसके प्रसारण द्वारा हमें इनके विषय में जानकारी घर बैठे मिल जाती है। इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक साधनों में दूरदर्शन ने भारतीय तंत्र वाद्यों के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है साथ ही भारतीय संगीत को पुनर्जीवित करने में अहम् भूमिका निभाई है।

माइक्रोफोन [ध्वनि विस्तारक यंत्र]

वर्तमान समय में इन वैज्ञानिक आविष्कारों ने संगीत के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है। इन साधनों के द्वारा संगीत के प्रचार-प्रसार को काफी लाभ हुआ है। इन नई वैज्ञानिक उपलब्धियों ने वाद्य यंत्रों तथा स्वर सप्तक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया वही संगीत के प्रचार और प्रसार में भी विशेष भूमिका निभाई है। प्राचीन समय में जिस संगीत का आनन्द प्रायः दरबारी लोग ही उठा पाते थे साधारण जनता उससे वंचित ही रह जाती थी। परन्तु इन वैज्ञानिक यंत्रों के द्वारा यह कार्य अब सर्वसुलभ हो सका है। इसमें माइक्रोफोन नामक यंत्र का विशेष महत्व रहा है।

सन् 1929 ई0[1] से माइक्रोफोन यंत्र का प्रयोग होने लगा है। जब से देश में इन माइक्रोफोन का प्रारम्भ हो गया है। तब से संगीत सभाओं, संगीत सम्मेलनों, महफिलों आदि स्थानों पर श्रोताओं की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती नजर आ रही है। पहले जब इन यंत्रों का प्रयोग सभाओं आदि में नही होता था उस समय कलाकार को गायन में अपनी आवाज को अत्यधिक तीव्र स्वर में गाना पड़ता था जिससे कि दूर-दूर तक बैठे श्रोताओं को सुनाई दे सके जिसका परिणाम यह होता था कि अधिक जोर-जोर से यानि एक निश्चित तीव्रता के आगे गाने पर स्वर माधुर्य का आनन्द नही रह पाता था। ध्वनि विस्तारक यन्त्रों ने इस कमी को पूरा किया है और यही कारण कि आज गायन के क्षेत्र में मिठास माधुर्यता पर अधिक जोर दिया जाता है न कि आवाज को तेज करने पर।

वादन के क्षेत्र में विशेषकर तंत्र वादन में ध्वनि विस्तारक यंत्रों का विशेष योगदान रहा है। यदि कहा

---

1 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अमित कुमार बनर्जी) पृ. 4.

जाये कि वाद्य यंत्रों के प्रचार में माइक्रोफोन का महत्व अधिक रहा है तो अनुचित न होगा। क्योंकि सितार या सरोद आदि तंत्र वाद्यों में किया गया मीड़ और गमक का बारीक काम सीमित दूरी तक के श्रोता ही सुन सकते थे यदि कहीं बड़ी सभा है तो उसका आनन्द माइक से दूर बैठने वाले श्रोता नही उठा सकते थे। लेकिन आज मीड़, गमक और क्रिंतन का कितना ही बारीक काम दिखाया जाए, ध्वनि विस्तारक यंत्र से वह अन्तिम श्रोता तक स्पष्ट सुनाई दे सकेगा।

इस आविष्कार से गायन वादन शैली में तो परिवर्तन हुआ ही है साथ-साथ संगीत वाद्यों के प्रति लोगों में रूचि भी जाग्रत हुयी है। संगीत इस समय राजा-महाराजो के महलों की चारदीवारी से निकलकर आम जनता के बीच आया। संगीतकारों ने भी प्रचार-प्रसार में योगदान दिया है। ध्वनि विस्तारक यंत्रों का प्रयोग बड़ी कुशलता से करना चाहिए क्योंकि यह एक तकनीकी काम है। इसके लिए यह ध्यान रखना चाहिए किस जगह लगाना है खुले जगह पर या बन्द हाल में। दूसरा यदि मंच के माइक से पहले स्पीकर की समुचित दूरी यदि स्पीकर यंत्र के अत्यन्त निकट रखा जायेगा और उसका मुंह माइक की तरफ रहा तो फीडबैक निश्चित रूप से आयेगा।

इसके अतिरिक्त सभागृह या सम्मेलन के आकार और श्रोताओं की संख्या को ध्यान में रखकर स्पीकर्स की संख्या निश्चित करना पड़ता है तथा अच्छे किस्म के माइक तथा जोड़ने वाले तारों को ठीक से लगाना । खुले तारों को वैसे ही लगा देने से माइक फेल होने की आशंका बनी रहती है ।

ध्वनि का पूर्ण प्रभाव जो हमारे कानों तक पहुंचता है वह सीधे नही पहुंचता बल्कि परावर्तन के नियम के आधार पर ध्वनि हमारे कानों तक पहुंचती है । यदि कोई हाल आदि में गायन हो रहा है तो आवाज हाल की दीवारों से परावर्तित होने के बाद हमारे कानों तक पहुंचती है । जब यह परावर्तन सीधी पहुंचने वाली तरंगों से 1/10 सेकेन्ड में हमारे कानों के पास पहुंचती है तो प्रति ध्वनि सुनाई देती है । यही कारण है कि हाल आदि में आवाज गूंजने लगती है । और श्रोताओं को गायन या वादन प्राकृतिक रूप से नहीं सुनाई देता है । इसी सब बातों को ध्यान में रखते हुए आजकल बड़े-बड़े शहरों में अच्छे-अच्छे सभागृह आदि का निर्माण किया जाता है जिनमें परावर्तन §रिफ्लेक्शन§ अनुनाद §रिजोनेन्स§, और प्रति ध्वनि §इकोज़§ आदि के नियमों को ध्यान में रखते हुए बनवाया जाता है ।

इस प्रकार इतना तो निश्चित होता है कि यदि इन ध्वनि विस्तारक यंत्रों (माइक्रोफोन) का आविष्कार न हुआ होता तो संगीत का प्रचार इतनी तेजी से न हुआ होता। संगीत के विशेष रूप तंत्र वाद्यों के प्रचार-प्रसार में इन माइक्रोफोन का बहुत बड़ा योगदान रहा है जिसे कभी भी भुलाया नही जा सकता है।

रिकार्डप्लेयर

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। आधुनिक युग में बहुत से वैज्ञानिक आविष्कार हुए। जिनके द्वारा संगीत के प्रचार-प्रसार में क्रान्ति सी आ गयी है। इन्हीं में से एक नाम "टेपरिकार्डर" भी है। आज के समय में रिकार्डप्लेयर का संगीत में ध्वनि अंकन में योगदान कम नही है। पहले बड़े-बड़े उस्तादों के गायन वादन को सुनने के लिए उन्हें खुश करना जहां कठिन था और मिन्नतों के बाद यदि खुश होकर उनका गायन अथवा वादन सुनने को मिल भी जाता था उसे एक बार में व्यक्ति ग्रहण नही कर पाता था या कभी किसी समारोहों आदि में हर व्यक्ति तो पहुंच नही सकता था जिससे जिससे वह कुछ सुन सकता या सीख पाता। इस कमी को दूर करने में जहां आकाशवाणी के द्वारा कुछ लाभ

अवश्य मिला कि व्यक्ति घर बैठे सुन सकता है। इसके अतिरिक्त दूरदर्शन द्वारा यह लाभ भी मिला कि व्यक्ति विशेष से परिचित भी हो जाता था देखकर उसके वादन को सुनकर वाद्यों के विषय में काफी जानकारी मिल जाती थी। लेकिन इन सबसे अधिक सुविधा लोगों को अब होने लगी है जब विज्ञान के द्वारा लोगों ने टेप-रिकार्डर की खोज की।

कभी-कभी यह होता है कि यदि टेलीविजन में कोई हमारा मनपसन्द प्रोग्राम संगीत का चल रहा है और हम उसे शान्त भाव से देख रहे हैं। परन्तु यदि अचानक बिजली चली जाये तो सारी शान्ति भंग हो जाती है। इसी जगह पर टेपरिकार्डर की अहम भूमिका रहती है। यदि टेपरिकार्डर है तो हम मनपसन्द संगीतकारों का कैसेट लगाकर उसे जितनी बार चाहे चलाकर सुन सकते है तथा उसकी गहन जानकारी प्राप्त कर सकते है। इसमें हम एक ही ध्वनि को बार-बार सुन सकते हैं। एक समय था जब रिकार्डस कम उपलब्ध थे किन्तु आज यह भी बहुत मात्रा में सुलभ हैं।

टेप रिकार्डर के निर्माण में ~~चुम्बकों और~~ चुम्बकों का बहुत उपयोग होता है। डेनमार्क के वैज्ञानिक पौलसन ने

सर्वप्रथम सन् 1896 में ध्वनि को चुम्बकीय रिकार्डिंग की थी। उन्होंने आधुनिक टेपरिकार्डरों में प्रयोग होने वाली टेप के स्थान पर इस्पात के तार की एक रील प्रयोग की थी। वैसे शुद्ध रूप में टेपों की शुरूआत तो सन् 1920 के दशक में हुयी है।[1]

रिकार्डिंग वाली कला दिन प्रति दिन उन्नति करती जा रही है। इसके द्वारा प्राचीन समय के संगीतज्ञों की कला/जो आज के लोग तब नही थे आज वैज्ञानिक प्रभाव के कारण जब चाहे रिकार्ड लगाकर सुन सकते है। आजकल तो कई तरह के कैसेट और रिकार्ड्स बाजार में उपलब्ध है। लॉग प्लेइंग रिकार्ड काम्पैक्ट डिस्क (सी.डी.) आदि।

सन् 1950 ई0[2] से अमेरिका में भारतीय संगीत लांग प्लेइंग रिकार्ड का प्रचार बढ़ा। वहां भारतीय कलाकारों के रिकार्ड बनाये गये और उन्हें भारत भेजा गया। टेप रिकार्ड से लम्बे-लम्बे कार्यक्रमों का रिकार्ड बना लेना और एक साथ

---

1 ओसवाल प्रतियोगिता विज्ञान, पृ. 33 अंक फरवरी, 1995.

2 हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता (डॉ0 अमित कुमार बनर्जी), पृ. 4.

कई लांग प्लेइंग रिकार्डों को लगाकर घंटों तक संगीत के आनन्द लेने की सुविधा आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व के कलाकारों और श्रोताओं को न रही होगी। कलाकारों की कला को सुरक्षित रखने में इन रिकार्डों का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

टेप रिकार्डर पर ध्वनि अंकित करने के लिए आवाज को पहले माइक्रोफोन द्वारा विद्युत संदेशों में बदला जाता है। माइक्रोफोन में ध्वनि तरंगों के परिवर्तनशील दाब से एक परिवर्तनशील वैद्युत धारा उत्पन्न होती है इस विद्युत धारा को तारों द्वारा रिकार्डिंग हैड तक ले जाया जाता है। जहां ये विद्युत संदेश निरन्तर रूप से चलते हुए चुम्बकीय टेप पर अंकित हो जाते हैं। जब टेप पर अंकित ध्वनि को सुनना होता है तो एक अन्य ऐसे (रिकार्डिंग हैड) से उसे गुजारते है। इस हैड को पुनरउत्पादक (Reproducicing head) कहते हैं। इस प्रकार टेप रिकार्डर ध्वनियों को अंकित कर उसे पुनः सुनने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। विज्ञान की यह देन आज संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए वरदान साबित हो रही है। इन वैज्ञानिक साधनों द्वारा संगीत में व्यापक प्रभाव पड़ा है एक तरह से संगीत के क्षेत्र में क्रान्ति सी आ गई हैं।

घरानेदार

संगीत एक ऐसी कला है जिसमें पूर्ण आस्था एवं प्रेम कई व्यक्तियों में पैदाइशी होता है जिसे जन्मजात भी कहते हैं। वैसे भी आज संगीत के प्रति रूचि लोगों में तीव्रता से फैल रही है। स्थान स्थान पर संगीत सम्मेलन हो रहे है। बम्बई ऐसे बड़े शहरों में एक सप्ताह भी ऐसा नही बीतता कि ख्याति नामक कलाकार का कार्यक्रम न हो। और इस ख्याति को प्राप्त करने के लिए वादक कलाकार को किसी भी बाज के अनुकूल बनाने के लिए बहुत अधिक परिश्रम चाहिए और यह परिश्रम किसी विद्वान के संरक्षण में होना चाहिए। यह शिक्षा घरानों में ही अधिक सुलभ हो सकती है। हर घराने की वादन शैली अलग-अलग होती है जिसका पालन कठोरता से प्रत्येक कलाकार को करना होता है। हिन्दुस्तानी संगीत की ज्ञान भंडार की प्रभावित शैलियों को जीवित रखने का श्रेय घरानों को ही रहा है।

"परम्परा और अपनी पृथक सत्ता के सम्मिश्रण से ही घराने जड़ पकड़ते और पनपते हैं।"[1]

---

1 घरानेदार गायकी (श्री वामन राव देशपांडे), पृ. 24.

घराना बनाने के लिए तीन पीढ़ियों का सिलसिला आवश्यक है ।

मनुष्य स्वभाव से ही ऐसा होता है कि किसी भी क्षेत्र में वो कुछ अच्छा करने का प्रयास करता है जैसे अपनी वादन शैली में ही मेहनत करके बाज के द्वारा आकर्षक बनाने का प्रयत्न हर घराने के संस्थापक करते हैं । कलाकार में वही उस घराने की पहचान बन जाती है ।

घराने की अपनी "रीति" या "अनुशासन" होता है संगीत की भाषा में कहा जाए तो घराने के कुछ कायदे होते हैं । प्रत्येक घराना किसी एक प्रभावशाली गुरू की आवाज की प्रकृति पर आधारित होता है । स्वर मानवी आवाज का एक अत्यन्त आन्तरिक एवं गूढ़ धर्म है । गुरू द्वारा उसे ही सांगोपाग सर्वधन किया जाता है तथा उसमें विभिन्न अलंकरणों से समृद्ध करके उसे शिष्य में उतारने के लिए वर्षों प्रयास करते है संगीत में इसे ही तालीम कहा गया है । इस प्रकार से इन कायदों में एक न टूटने वाला सिलसिला बन जाता है और यही पर घरानों का उदगम होता है ।

घरानों की शिक्षा हमें उच्च एवं अभिजात संगीत से ही मिलती है । अभिजात गायकी का निर्माण व विकास

घराना परम्परा के अन्तर्गत प्रभावशाली गुरू और योग्य शिष्य के द्वारा ही संभव है। किसी भी आवाज को गायकी के अनुकूल बनाने के लिए बहुत ही परिश्रम चाहिए। यही सब बातें बाज के लिए भी है। यह शिक्षा घरानों के द्वारा आसानी से प्राप्त की जा सकती है। आज हिन्दुस्तानी संगीत के ज्ञान भंडार की प्रभावित शैलियों को जीवित रखने का श्रेय हम इन घरानों को ही दे सकते है।

ध्रुपद के साथ-साथ बीन और रबाब की परम्परा तानसेन के समय से बनी है गायन और वादन के क्षेत्र में सेनियो की देन को भारतीय संगीत के इतिहास में हमेशा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आधुनिक युग में दो प्रसिद्ध बीनकार थे जिनके नाम थे बन्दे अली खाँ और रजब अली खाँ।

प्राचीन कालीन वीणा की बाज की जगह आधुनिक समय में प्रचलित विचित्र वीणा ने ले लिया है आजकल विचित्र वीणा एक लोकप्रिय वाद्य हो गया है। प्रसिद्ध अब्दुल अजीज खाँ विचित्र बीन वादक, पहले तो सारंगी बजाते थे लेकिन आज एक अच्छे विचित्र वीणा वादक बने है।

वायलिन एक विदेशी वाद्ययंत्र माना जाता है यद्यपि

वायलिन वाद्य सितार और सरोद जैसे भारतीय वाद्य यंत्रों के समान नहीं है फिर आधुनिक समय में वायलिन ने भी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ पहले तो वायलिन वादक थे बाद में ये सरोद बजाने लगे थे। सरोद वादक करम तुल्ला खाँ से, गगन चटर्जी महोदय ने वायलिन पर शास्त्रीय संगीत सीखा था। इन्होंने गत शैली से वायलिन बजाया। अलाउद्दीन खाँ साहब वायलिन वाद्य पर गत गायन, लोक-धुन सभी अंग सुचारू रूप से प्रस्तुत करते थे। वर्तमान समय में वायलिन सोलो का कार्यक्रम प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है - गायकी (ख्याल शैली) और तंत्र अंग (गत अंग)। इसके साथ-साथ वायलिन संगत के क्षेत्र में भी आगे आ रहा है लेकिन कुछ लोगों का विचार है कि वायलिन की संगति उतनी मधुर नहीं होती जितनी सारंगी की।

प्रसिद्ध सरोद वादक सखावत हुसैन खाँ के घराने का सम्बन्ध शाहजहाँपुर के सरोदियों के घराने से था। सखावत खाँ के पुत्र मोहम्मद खाँ, पिता की परम्परा के अनुयायी थे और वे कलकत्ते में रहकर सरोद वादन एवं संगीत शिक्षण का कार्य करते थे। सखावत हुसैन के छोटे पुत्र प्रो० इलियास खाँ लखनऊ मेरिस कालेज में सितार के प्राध्यापक है।

वर्तमान युग में सितार का प्रचार प्रसार तंत्र वाद्यों में सर्वाधिक है। सितार ने वीणा के प्रभाव को धूमिल करके उसकी लोकप्रियता को अपना लिया। इसका श्रेय सेनिया परम्परा से संयुक्त रहीम सेन और उनके पुत्र सुपुत्र अमृत सेन को है। रहीम सेन के पिता सुखसेन प्रसिद्ध गायक थे। रहीम सेन ने भी बाल्यकाल में ध्रुपद की शिक्षा ली। उसी समय सुखसेन का देहान्त हो गया। रहीम सेन सितार की ओर झुके और अपने ससुर दुल्हे खाँ जी से सितार सीखा।

आज के समय में घराने का अस्तित्व लगभग खत्म सा हो रहा है विशेषकर तंत्र वादन के क्षेत्र में। इस समय जो सितार वादन प्रचलित है, उसमें व्यक्तिगत प्रतिभा की प्रधानता है और बहुत हद तक उनमें वीणा और रबाब की वाद्य शैली का परित्याग है आज के समय में एक अच्छा वादक उन सभी शैलियों का गुण अपने वादन में भरने का प्रयास करता है, जिससे श्रोता आनन्दित हों और उसके वादन की प्रशंसा करें। इस दृष्टि से देखें तो घराने या शैलियों की परम्परा टूटती नजर आती है। सितार ऐसे तंत्र वाद्य के घराने वैसे भी कम है क्योंकि इसके पूर्वज या तो गायक होते या फिर वीणा वादक होते थे इस कारण से सितार तो घरानेदारी के रूप में कम ही प्रचलित है। सितार की

की घरानेदार शैली को बाज की संज्ञा प्रदान की गयी है ।

सन् 1940 - 45 के लगभग सितार के दो बाज प्रचलित थे, मशीतखानी और रजाखानी । ये दोनों ही बाज अलग-अलग घरानों से सम्बन्ध रखते थे । एक घराने का कलाकार दूसरे घराने के बाज को नही बजा सकता था। किन्तु धीरे-धीरे यह समाप्त होने लगा और लोगों ने दोनों शैलियों का प्रयोग एक साथ करना प्रारम्भ कर दिया यह परिवर्तन कण्ठ संगीत की ख्याल शैली के प्रभाव के कारण हुआ ।

पश्चिमी बाज ध्रुपद शैली पर आधारित होने के कारण इसमें विलम्बित लय का प्रयोग किया जाता था । बीन अंग का इमाला, लड़गुथाव, रबाब और सुर सिंगार का था इस बाज की विशेषता थी ।

जबकि पूर्वी बाज ख्याल शैली पर आधारित होने के कारण द्रुत वादन शैली का प्रयोग होता था इसमें ठुमरियों पर आधारित सुन्दर, कलात्मक, भाव प्रवण गतें प्रयुक्त होती है तथा द्रुत लय में झाले के साथ वादन समाप्त करते है ।

आधुनिक समय में इन दोनों बाजों की मिली जुली

शैली का वादन कलाकार करते है । प्रचलित बाजों में विविधता और स्वतंत्रता का प्रभाव अधिक दिखाई देता है । आधुनिक समय में जो सबसे अधिक प्रचलित बाज का प्रयोग हो रहा है उसका श्रेय हम इनायत खाँ और उनके पिता इमदाद खाँ को दे सकते है । इस बाज का अपना अलग ढंग एवं पद्धति होती थी जोड़ आलाप और गत प्रधान थे । किन्तु आज के समय में कुल मिलाकर देखें तो घराने का प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो रहा है । आज ऐसे अनेक कलाकार है जो किसी घराने से सम्बद्ध न होकर अपना स्वतंत्र बाज निकाला है जिनमें पं० रवि शंकर का नाम मुख्य रूप से ले सकते है । आज के समय में कलाकार को उसके वादन में पूरी स्वतंत्रता है ।

हमारे देश में घरानेदार संगीत सांस्कृतिक एकता या संश्लेषण का सबसे बड़ा प्रतीक रहा है । आज घरानों के अस्तित्व के कारण ही संगीत का क्रियात्मक स्वरूप सुरक्षित रह सका । घरानों ने ही संगीत के कलात्मक स्वरूप व प्राचीन बंदिशों और गतों को सुरक्षित रखा । जो बड़े-बड़े कलाकारों और संगीतज्ञों के रूप में संग्रहित है । यदि घराने न होते तथा घरानेदार गायकों वादकों में संगीत के प्रति सच्ची भावना और पुनीत भावना न होती तो संगीत के इस संचित धन का नाश हो गया होता ।

आजकल वैज्ञानिक साधनों के कारण टी०वी० टेप रिकार्डर आदि साधनों के कारण श्रोता जब चाहे अपनी अभिरूचि के अनुसार सुन तथा देख सकता है। अतः पहले की भाँति अनुशासन अब सम्भव नही है पर घराने में जो सिद्धान्त छिपे है, उसके महत्व की उपेक्षा भी नही की जा सकती है।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "स्वतंत्रता के पश्चात् तंत्र वाद्यों की उन्नति एवं अवनति का विश्लेषणात्मक अध्ययन" के माध्यम से इस मूल विषय वस्तु के गहन अध्ययन का प्रयास किया गया है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अब तक तंत्र वाद्यों एवं इनसे सम्बन्धित विभिन्न अवयवों के सन्दर्भ में क्या कुछ परिवर्तन हुआ है। विभिन्न संगीत ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेख के अनुसार एक बात तो स्पष्ट है कि तंत्र वाद्यों का प्रचलन एवं प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। यह भी दृष्टिगोचर होता है कि समय-समय पर इनके स्वरूप में परिवर्तन भी हुआ है और इनकी वादन शैलियों में भी। जहां तक तंत्र वाद्य सितार का प्रश्न है बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इसके प्रायः हर पहलू में परिवर्तन हुआ है। चाहे वह बनावट हो या वादन सामग्री या वादन शैली। यह तथ्य सितार के सम्बन्ध में सर्वमान्य है कि सदारंग के छोटे भाई खुसरो खां

ने सितार का आविष्कार किया था पहले के कुछ लोगों की मान्यता थी कि सितार का आविष्कार अलाउद्दीन खिलजी के दरबार के विद्वान अमीर खुसरो ने किया था। परन्तु बाद के अन्वेषणों में 17 वीं शताब्दी के ग्रन्थों के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार का आविष्कार खुसरो खाँ ने ही किया था। पहले सितार में तीन तारों का प्रयोग किया जाता था जो तीन तारों वाले सहतार के नाम से जाना जाता था। इसे त्रितंत्री वीणा भी कहा जाता था। इसके पश्चात् विकास क्रम में सितार में सात तारों का प्रयोग होने लगा था। सितार में प्राचीन काल से अब तक अनेक परिवर्तन हुए हैं पहले सादा सितार ही प्रयोग होता था। अब तरब दार सितार का प्रचलन बढ़ने लगा है। आजकल तो सितार के दोनों रूप प्रचार में है। यह विकास सितार में लगभग बीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था। प्रारम्भ में तो सितार भी वीणा पद्धति के अधीन था। सितार में तारों की व्यवस्था में मुख्य वादन तंत्री दक्षिण पार्श्व में और चिकारी के तारों का मुख्य घुड़च के वाम पार्श्व में होने के कारण सितार पर तानों, तोड़ों और झालों की तैयारी में सुविधा हो गयी। पहले जो काम तीन चार उंगलियों से भी सम्भव न था उसे आज केवल एक दो उंगली के प्रयोग से ही सम्भव है।

स्वतंत्रता के समय सितार में विशेष परिवर्तन हुए। सितार का आकार बड़ा होने लगा जिससे उसमें तारता, तीव्रता व गुण की दृष्टि से विकास हुआ। आलाप और जोड़ का काम सुरबहार में होता था व अब सितार में होने लगा। गत की सुविधा भी सितार में होने लगी। यही कारण है कि सुर बहार का लोप हो गया और सितार का प्रचार अधिकाधिक होने लगा है। सितार में मधुरता के गुणों का विकास भी हुआ। आजकल सितार एक मधुर वाद्ययंत्र में गिना जाता है। लगभग उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में वाद्यों की गत नामक एक नवीन शैली का आर्विभाव हुआ। नई-नई गायन वादन शैलियों का विकास हुआ। वाद्यों को स्वतंत्र वादन के लिए प्रयोग किया जाने लगा। उनका स्वतंत्र अस्तित्व सामने आया। वाद्य मान के प्रभाव से मुक्त हो गए। इसमें मुख्यतः सितार, सरोद, सन्तूर आदि वाद्य आयेंगे।

वर्तमान समय में तंत्र वाद्यों के विकास के कारण आज सितार और सरोद ऐसे तंत्र वाद्यों के कलाकारों को काफी कुछ कर सकने के लिए है। आजकल वाद्यों में वादक बहुत कुछ सामग्री की रचना कर सकता है जैसे - कण, मुर्की, जमजमा, कृन्तन, घसीट, मीड़, गमक के अनेक प्रकार झाला के अनेक प्रकार, विभिन्न तालों में गते आदि

सभी इन तंत्र वाद्यों में उत्पन्न की जा सकती है। आलाप में भी जोड़ झाला आदि के प्रयोग द्वारा आलाप को अधिक आकर्षक बनाया जा सकता है। प्राचीन समय में जो संगीत केवल राजाओं महाराजाओं तक ही सीमित था तंत्र वाद्यों का भी प्रचार उस समय बहुत कम ही था। परन्तु आधुनिक समय में कुछ प्रमुख तंत्रकारों के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप आज संगीत के क्षेत्र में तंत्र वाद्यों का विशेष प्रचार किया। आज इन कलाकारों के कारण ही तंत्र वाद्यों का इतना प्रचार हो गया है कि अधिक लोग इसको सीखने लगे हैं तथा अनेक नये कलाकार देश की सेवा में लगे है। आज इन कलाकारों के द्वारा जगह-जगह संगीत प्रोग्राम दिये जा रहे हैं। यह वाद्यों के विकास को ही दर्शाता है कि कितने ही कलाकार आज देश में तंत्र वादन के क्षेत्र में है। आज सरकार के द्वारा तथा कुछ ख्याति प्राप्त कलाकारों के द्वारा देश में संगीत के संरक्षणार्थ अनेक विद्यालय महाविद्यालय आदि खुलवाये गये हैं। जगह-जगह संगीत सम्मेलनों का आयोजन भी हो रहा है।

आज का युग हम कह सकते है कि वैज्ञानिक युग है। विज्ञान के द्वारा हर दिशा में आज इतने कार्य हुए है जिसके परिणामस्वरूप आकाशवाणी के माध्यम से आज हजारों मील दूर तक के कार्यक्रमों को घर बैठे सुन सकते हैं और

दूरदर्शन के द्वारा तो हम संगीत के कार्यक्रमों को घर बैठे कलाकार को देख सकते है तथा उसकी वादन क्रिया को सीख सकते हैं।

विकास के इस बढ़ते प्रभाव के कारण आज बी.सी. आर., बी.सी.पी. तथा सी.डी. आदि के द्वारा क यह सुविधा उपलब्ध है कि जिस कलाकार के कार्यक्रम को देखना चाहे उसे जब चाहे लगाकर देखा जा सकता है संगीत प्रचार प्रसार में यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

टेप-रिकार्डर, के द्वारा तो आज के समय में हम जिस कलाकार की वादन क्रिया को जिस समय सुनना चाहे सुन सकते है। साथ ही साथ जितनी चाहे उतनी बार उसे सुनकर सीख सकते हैं। आज के समय में तो इतना अधिक विकास हो गया है कि तरह-तरह के रिकार्ड्स उपलब्ध होने लगे है जैसे एल.पी., ई.पी., सी.डी. आदि। साथ ही साथ माइक्रोफोन्स के द्वारा भी संगीत का विकास कम नही हो रहा है। टेपरिकार्ड से लम्बे लम्बे कार्यक्रमों का रिकार्ड बना लेना और एक साथ कई लांगप्लेइंग रिकार्डों को लगाकर घण्टों तक संगीत के आनन्द लेने की कल्पना आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व के कलाकारों और श्रोताओं को न थी जो आज के समय में उपलब्ध है।

अतः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से आधुनिक भारतीय संगीत के दो पुनरूद्धारक प्रातः स्मरणीय पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर एवं पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने भारतीय संगीत के चतुर्मुखी विकास के लिए जो अथक प्रयास किये थे वह स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त हमारे देश के विकास की गति में सांस्कृतिक विकास के अन्तर्गत काफी फला-फूला है। चाहे शिक्षण संस्थाओं में संगीत के शिक्षण का प्रश्न है या संगीत के विविध आयोजनों का स्वतंत्रता के बाद शिक्षण संस्थानों के बढ़ते हुए गति तथा तकनीकी विकास के अन्तर्गत आकाशवाणी दूरदर्शन और अन्य यांत्रिक उपकरणों के विकास एवं प्रचलन के साथ-साथ तंत्र वाद्यों में भी उत्तरोत्तर विकास परिलक्षित हुआ है। जहां तक तंत्र वाद्य सितार का प्रश्न है, इसकी बनावट, वादन सामग्री शैली एवं प्रचार प्रसार में कई उपलब्धियां हमें देखने को मिलती है जो सम्भवतः इसे अन्य तंत्र वाद्यों की तुलना में। इसे सर्वाधिक प्रिय वाद्य का ध्यान दिलाती है। इसमें कोई सन्देह नही कि इतने विविध आयामों में प्रगति के साथ-साथ शैली के कुछ पहलू में कमियां भी दिखती है तथापि पिछले पांच दशकों में विकास और प्रचार की दृष्टि में तंत्र वाद्यों की जो उन्नति हुयी है वह प्रसंशनीय है सराहनीय है और उज्जवल भविष्य का द्योतक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 अष्टछाप के वाद्ययंत्र (श्री चुन्नी लाल शेष)

2 उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन का ध्वन्यांकित अध्ययन (डॉ० रमाकान्त द्विवेदी)

3 कालीदास साहित्य एवं वादन कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ)

4 कालीदास साहित्य एवं संगीत कला (डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ)

5 घरानेदार गायकी (वामनराव देशपाण्डे)

6 तन्त्रीनाद (डॉ० लालमणि मिश्र)

7 निबन्ध संगीत (लक्ष्मी नारायण गर्ग)

8 प्राचीन भारत में संगीत (धर्मावती श्रीवास्तव)

9 प्राचीन भारत का इतिहास (रीता शर्मा)

10 भारतीय संगीत वाद्य (डॉ० लाल मणि मिश्र)

11 भारतीय इतिहास में संगीत (भगवत शरण शर्मा)

12 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण (स्वतंत्र शर्मा)

13 भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण (स्वतंत्र शर्मा)

14 भारतीय संगीत कोश (विमला कान्त राय चौधरी)

15 भारतीय संगीत का इतिहास (श्री शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे)

16 भारतीय संगीत का इतिहास (उमेश जोशी)

17 भारतीय संगीत का इतिहास (ठाकुर जयदेव सिंह)

18 मुसलमान और भारतीय संगीत (बृहस्पति)

19 सौन्दर्यशास्त्र के तत्व (डॉ० कुमार विमल)

20 संगीत पूर्व और पश्चिम (प्रो० एच.जे. क्लॉलरॉयटर)

21 संगीत में ताल वाद्यों की उपयोगिता (डॉ० चित्रा गुप्ता)

22 संगीतायन (अमलदास शर्मा)

23 संगीतशास्त्र (के वासुदेव शास्त्री)

24 संगीत निबन्ध संग्रह (प्रो० हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव)

25 संगीत सरोवर (राम अवतार "धीर" संगीताचार्य)

26 स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान (डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती)

27 सितार मार्ग (श्रीपद बन्धोपाध्याय)

28 संगीत शिक्षण की समस्याएं (ध्यान सिंह वर्मा)

29 सूरकाव्य में संगीत लालित्य (डेजी वालिया)

30 संगीत मंजूषा (इन्द्राणी चक्रवर्ती)

31 संगीत बोध (शरद्चन्द्र श्रीधर परांजपे)

32 संगीत चिन्तामणि (सुमित्र कुमार एवं बृहस्पति)

33 हमारा आधुनिक संगीत (सुशील कुमार चौबे)

34 हमारे संगीत रत्न (लक्ष्मी नारायण गर्ग)

35 हिन्दुस्तानी संगीत "परिवर्तनशीलता" (डॉ० असित कुमार बनर्जी)

36 हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र (भगवत शरण शर्मा)

37 सरगम : एन इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन म्यूजिक (विष्णु दास सिरॉली)

38 ओसवाल संगीत प्रतियोगिता विज्ञान अंक फरवरी, 1995.